प्राप्ति स्थान—

विश्व मंगल प्रकाशन मन्दिर

मानद मन्त्री
श्री रतिलाल अमृतलाल (वकील)
श्री जयन्तीलाल मणिलाल शाह

C/o शाह रतिलाल पुनमचन्द
बर्तन के व्यापारी
ठि. बाजार में
मु पो पाटण (उ गु) व्हाया म्हेसाना W.

मूल्य : दो रुपये

प्रथमावृत्ति १०००
वि सं २०२५
वीर सं २४९५
[illegible]

પૂ પાદ સુપ્રસિદ્ધ વક્તા, પ્રશાંતમૂર્તિ, પંન્યાસજી મહારાજ

શ્રી કનકવિજયજી ગણિવર

જન્મ : વિ. સં. ૧૯૭૨ [illegible] દીક્ષા વિ. સં. ૧૯૮૩

ગણિ પંન્યાસપદ વિ. સં. ૨૦૦૫

पुरो वचन

विश्व मंगल प्रकाशन मन्दिर की ओर से प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष की अनुभूति हो रही है। पूज्यपाद सुप्रसिद्ध वक्ता, प्रशान्त मूर्ति पन्यासजी म. श्री कनकविजयजी गणिवर श्री अपने शिष्य समुदाय सहित जब रतलाम में चातुर्मास स्थित थे तब पर्वाधिराज श्री पर्युषण पर्व की आराधना के पवित्र उद्देश्य से एकत्रित हुए श्रोताजनों के समक्ष श्री पन्यासजी म. ने सारगर्भित प्रवचन दिये थे। पर्युषण पर्व की आराधना करने के इच्छुक अन्य आराधकों को भी मार्गदर्शन मिले तब इस हेतु से उन मननीय प्रवचनों का सारभूत अवतरण एवम् सम्पादन पण्डित श्री [illegible] [illegible] '[illegible]' में लिखा है। पण्डितजी ने निष्ठापूर्वक सुन्दरशैली से सम्पादन किया है। पंन्यासजी म. श्री के प्रति उनकी भक्ति-भावना, निष्ठा एवं तत्परता प्रशंसनीय है। पूज्यपाद पन्यासजी म. के भावों को इस सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने के [illegible] प्रयास के लिए, हम पण्डितजी को [illegible] [illegible] अर्पित करते हैं।

'सफलता का सोपान' मंगल माधुरी प्राचीन सज्झायमाला, दर्शन-चिंतन सुधा, दर्शन माधुरी, दर्शन स्वाध्याय सुधा आदि का प्रकाशन हो रहा है। इन प्रवचनों में यदि प्रवचनकार के आगम के विरुद्ध या जैन सिद्धांत के विरुद्ध कोई बात हो तो उसके लिये हम मिच्छामि दुक्कडम् देते हैं।

इन पर्युषण पर्व के प्रवचनों का वाचन मनन परिशीलन कर सभी मुमुक्षु धर्मप्रेमी भव्यजीव आराधना के पथ पर चलकर आत्म कल्याण के लिए उद्यत हों ऐसी मंगल भावना करते हैं।

पाटण
कार्तिक सु
सं. २०३५

लि. हम
रतिलाल अमृतलाल वकील
शाह जयन्तिलाल मणिलाल
मानद मंत्री
जिन मंगल प्रकाशन मन्दिर

परम पू. शासन प्रभावक व्याख्यान-वाचस्पति आचार्य देव श्री विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी म. के शिष्य रत्नों में पू. पन्यासजी म. का अपना विशिष्ट स्थान है। आपकी विद्वत्ता, चिन्तन एवं वक्तृत्व की विलक्षण प्रतिभा और प्रवचन शैली से ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना द्वारा आप जन-जन के मन तक आत्म-जागरण का संदेश पहुँचा रहे हैं।

रतलाम संघ के अत्यन्त आग्रह और अनुनय का स्वीकार कर पूज्यपाद सन्मार्गदर्शक आचार्यदेव श्रीमद् विजय [illegible] सूरीश्वरजी म. की आज्ञा से पन्यासजी महाराज का वि. सं. २०२६ का चातुर्मास रतलाम नगर में हुआ। [illegible] की अवस्था प्राप्त होने के बावजूद [illegible] की भीषण गर्मी को सहन करके लगभग २०० मील का उग्र विहार करके पन्यासजी म. का रतलाम नगर में आषाढ़ सुदि ३ को प्रवेश पदार्पण हुआ। श्री संघ रतलाम ने शानदार स्वागत समारोह किया। जैन शासन की शानदार प्रभावना हुई।

पूज्य पन्यासजी महाराज के चातुर्मास से रतलाम संघ में अभूतपूर्व उत्साह और उल्लास का वातावरण निर्मित हुआ। [illegible] आयोजनों से विविध प्रकार के [illegible] धार्मिक जागृति का संचार हुआ।

पूज्य महाराज श्री की औपदेशिक वाणी से रतलाम नगर की [illegible] इस उद्देश्य से प्रति [illegible] आध्यात्मिक प्रवचनों का [illegible]

किया गया। पू पन्यासजी म की वाणी को बहुजन हितकारी और सर्वोपयोगी बनाने हेतु उसे लिपिबद्ध और सम्पादित करवाया गया। प्रवचनो को लिपिबद्ध करने और सम्पादित करने का काम इन पंक्तियो के लेखक को ही सौंपा गया था। वे सम्पादित प्रवचन श्री विश्व मगल प्रकाशन मन्दिर पाटण द्वारा 'प्रगति के पथ पर' नामक पुस्तक के रूप मे प्रकाशित किये जा चुके है।

पूज्य पन्यासजी महाराज श्री ने पर्युषणपर्व के प्रारंभिक तीन दिन मे इस महा मगलमय पर्व की सफल आराधना के सम्बन्ध मे विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला था। उन प्रेरक प्रवचनो को मैंने लिपिबद्ध किया और प्रवचनकार के मूलभावो को सुरक्षित रखते हुए उनका सम्पादन किया। विषय का प्रतिपादन एव दी गई सामग्री प्रवचनकार की ही है। मैंने तो विषय को क्रमबद्ध करने और भाषा को सवारने का ही कार्य किया है।

और शांति के प्रकाश को प्रकाश में परिणत करते हैं, अतएव यह प्रकाश का पर्व कहा जाता है। इसी तरह पर्यूषण पर्व में मन में जमे हुए विकारों की गन्दगी का नाश करना होता है, आत्मा के दुर्गुणों को चुन चुन कर अलग करना होता है, हृदय को स्वच्छ करना होता है, आत्मा को उसके स्वाभाविक गुणों से अलंकृत करना होता है। मानव सामाजिक प्राणी होने से एक दूसरे के सम्पर्क में उसे आना पड़ता है। इस सम्पर्क के कारण पारस्परिक मनमुटाव या वैर विरोध का प्रसंग आ जाना स्वाभाविक है। ऐसे कषायजन्य प्रसंगों के लिए परस्पर में क्षमा का आदान-प्रदान कर हृदय को विशुद्ध बनाने वाला यह महान विशुद्धि का पर्व है। [illegible] की भावनाओं द्वारा आत्मा को आलोकित करने वाला यह [illegible] पर्व है। इस आलोकिक पर्व की [illegible] आराधना किस प्रकार हो सकती है इसका बड़ा ही सुन्दर विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। प्रत्येक जन [illegible] के लिये यह [illegible] और [illegible] है।

[illegible]

[illegible]

और (अष्टम) तप का हृदय स्पर्शी विवेचन किया है। तीसरे प्रवचन में चैत्य परिपाटी और एकादश वार्षिक कृत्यों की प्रभावपूर्ण शैली में व्याख्या की गई है। उदाहरणों और कथानकों के द्वारा विषय को स्पष्ट और हृदयग्राही बना दिया गया है।

पूज्य पन्यासजी महाराज के इन प्रवचनों में जैन संस्कृति की भव्यता का पद-पद पर परिचय प्राप्त होता है। आज के युग की नई पीढ़ी अपनी संस्कृति के प्रति आस्था-हीन होती जा रही है इसका मुख्य कारण यह है कि इस पीढ़ी को अपनी संस्कृति की भव्यता का ठीक ढंग से ज्ञान ही नहीं है। अतएव इस युग की यह मूलभूत आवश्यकता है कि उदीयमान पीढ़ी को अपनी संस्कृति की भव्यता का परिचय कराया जाय ताकि वह पथ भ्रष्ट न हो और अपनी श्रद्धा के दीप को सुरक्षित रख सके। पन्यासजी म. के इन प्रवचनों में यह मूलभूत तत्त्व सन्निहित है। इन प्रवचनों में जैन संस्कृति की भव्यता और जैन इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर पर्याप्त प्रकाश डालने वाली सामग्री दी गई है।

किये गये हैं। उनमें यदि कहीं स्खलना हो तो सम्पादक के नाते मैं उत्तरदायी हूँ।

इस पुस्तक का मुद्रण भी मेरे ही प्रेस में किया गया है। यथा सम्भव शुद्ध और सुन्दर मुद्रण का प्रयत्न किया गया है, तदपि रही हुई त्रुटियों के लिये मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

विद्या भारती प्रकाशन मन्दिर पाटन की ओर से इन प्रवचनों का प्रकाशन किया जा रहा है अतएव यह धन्यवाद का पात्र है।

'पर्युषण पर्व के दस प्रवचन' से प्रेरणा पाकर सब आत्मार्थी आत्म-दर्शन प्राप्ति की साधना में उद्यत बनें इसी मंगल कामना के साथ।

रतलाम

विनम्र
[illegible]

प्रवचनकार की जीवन रेखा

सुरम्य उपवन के आंचल मे मृदुल टहनियो पर पुष्प प्रस्फुटित होते है। फूल की कोमलता सुन्दरता और सुगन्ध से उपवन का कण-कण सौरभ से सुवासित हो उठता है। दर्शक का मन-मयूर नाच उठता है। वह उल्लास और आह्लाद से भर जाता है। ठीक इसी तरह संत-जन विश्व-वाटिका के रमणीय सुमन है। वे स्वयं जीवन की सुवास से सुवासित होते है और अपने आसपास के वातावरण को भी सुवासित और सुरम्य बनाते हैं। ऐसे संतजनो मे प्रस्तुत प्रवचनो के प्रवचनकार, शान्तमूर्ति प्रसिद्ध वक्ता, समर्थ साहित्यकार पन्यासजी महाराजश्री कनकविजयजी गणिवर का प्रमुख स्थान है। जीवन के उषाकाल मे ही ऐश-आराम और सांसारिक प्रलोभनो से ऊपर उठकर मोक्षमार्ग की आराधना हेतु त्याग प्रधान संयमनिष्ठ जीवन अंगीकार करना आपके जीवन की प्रमुख विशेषता है। साधारण प्राणी ऐश-आराम की ओर झुकता परन्तु विशिष्ट व्यक्ति विशिष्ट प्रकार की साधना करके जन-कल्याण के लिए सांसारिक सुखोपभोग का त्याग करते और त्याग का ऊंचा आदर्श उपस्थित करते है। पन्यासजी महाराज का [illegible] जीवन [illegible] आदर्श जीवन है। [illegible] महान जीवन [illegible] का प्रयत्न किया जा[illegible]

बाल्यावस्था और प्रव्रज्या ग्रहण :

श्री कल्याणभाई बचपन से ही सुसंस्कारी थे। पूर्वकालीन उत्कृष्ट कोटि के धर्मसंस्कारों के कारण तथा पिता श्री [illegible]चन्द भाई की प्रेरणा से वे चार पांच वर्ष की उम्र में ही धर्म के प्रति अनुराग रखने लगे। किन्तु विधि की विडम्बना से श्री [illegible] बेन अपने लाडले पुत्र को अल्पवय में छोड़ कर स्वर्गगामी हो गई थी। माता की ममतामय छाया छिन गई। पड़ोस में रहने वाले [illegible]भाई जवेरी की धर्मपत्नी श्री नन्दुबेन ने अपने पुत्र के समान ही इनका लालन-पालन किया। कल्याणभाई अपने पिताश्री के साथ निरन्तर जिनालय में अष्टप्रकारी पूजा करते थे। पर्व दिनों में प्रतिक्रमण करना, कंदमूल का त्याग, रात्रि-भोजन-त्याग का व्रत बचपन से ही था। १० वर्ष की छोटी वय में ही चार प्रकरण, पंच प्रतिक्रमण, नवस्मरण इत्यादि ग्रन्थ [illegible] कंठस्थ थे। अहमदाबाद में [illegible] आचार्यदेव श्रीमद् विजयदान सूरीश्वरजी महाराज श्री के पट्टनायक पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय प्रेम सूरीश्वरजी महाराजश्री के संपर्क में आने से तथा उनके पट्टधर [illegible]

[illegible] उनका [illegible] नाम [illegible]

[illegible]

[illegible]

वक्तृत्व एवं साहित्य सृजन :

पूज्य पन्यासजी म० जहाँ एक ओर सफल वक्ता हैं वहाँ दूसरी ओर उच्च कोटि के लेखक भी हैं। प्रवचनकार होने के साथ ही साथ साहित्यकार होना एक अनोखा [illegible] है। आप भी सुमधुर और शान्त शैली में प्रवचन करते हैं और धाराप्रवाह रूप में आपकी लेखनी साहित्य सृजन करती है। जैन समाज में साहित्य सृजन को प्रोत्साहन देने के लिये प्रसिद्ध 'कल्याण' मासिक आपकी प्रेरणा का ही सुफल है। इसमें अनेकविध उपनाम से आप नानाविध सामग्री पाठकों को परोसते हैं। आपने १५-२० प्रकाशनों का सम्पादन तथा सृजन किया है। संस्कारदीप, दीप माल, मङ्गलदीप, जैन तीर्थों का इतिहास, रामायण का विवेचन, श्री शत्रुंजय महात्म्य इत्यादि आपकी लिखित तथा सम्पादित प्रसिद्ध साहित्य-कृतियाँ हैं। आपकी प्रवचन-शक्ति अद्भुत है। [illegible] गुजराती तथा हिन्दी दोनों में आप किसी भी विषय पर घण्टों तक प्रवचन कर सकते हैं। श्रोतागण मन्त्रमुग्ध होकर श्रवण करते हैं। आपके व्याख्यानों का प्रकाशन हुआ है। हिन्दी में [illegible] किया गया है।

१ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सिद्धचन्दजी रा [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] वर्तमान [illegible] [illegible] [illegible] रा [illegible] इत्यादि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

आपकी बहिन प्रशान्त विदुषी साध्वी श्री दर्शन श्री जी म का अभी अभी स्वर्गवास हुआ है। आपका विशाल साध्वी-समुदाय है।

उपसंहार :

इस प्रकार प्रस्तुत प्रवचनो के प्रवचनकार पन्यासजी श्री कनकविजयजी गणिवर अपने लेखो और प्रवचनो द्वारा समाज मे जागृति का अभियान चला रहे है। अपने तप पूत संयमी जीवन और ओजस्वी व्याख्यानो के द्वारा जिन-शासन की प्रभावना कर रहे है। शासनदेव से कामना है कि आप दीर्घ काल तक जिनशासन की सेवा करते रहे

- सम्पादक

अनुक्रम

		पृष्ठ
प्रथम प्रवचन	....	१
द्वितीय प्रवचन	....	५८
तृतीय प्रवचन	....	१२७

पर्वाधिराज श्री पर्युषण महा-पर्व की आराधना

१. प्रथम दिवस का प्रवचन :

अष्टाह्निकाः पर्वसंज्ञाः [illegible] ।
[illegible] [illegible] सदाचरणं [illegible] परमार्हतैः ॥

आज का यह मंगलमय प्रभात एक अनोखा ही प्रकाश-पुंज लेकर आया है। दिन तो प्रतिदिन सूर्योदय होता है, और उसकी सुनहरी किरणें रात्रि के अन्धकार को दूर कर चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश बिखेर देती हैं; परन्तु आज का प्रभात, प्रतिदिन के प्रभात की अपेक्षा एक नवीन सन्देश लेकर आया है; वह अलौकिक रात्रि के घने अन्धकार का भी [illegible] हो चुका है, परन्तु आज तो मानव मन के और हमारे जीवन में व्याप्त अज्ञान मिथ्यात्व को छिन्न-भिन्न कर आत्मा की अनादि की वासनाओं का पुनः-जागरण और शुद्धि का दिव्य सन्देश ले आया है।

आज पर्युषण पर्व का मंगलमय प्रभात है। [illegible] और [illegible] [illegible] है कि, [illegible] हो चुकी है, [illegible] हो चुका है, [illegible] [illegible] [illegible]

करने वाली वायु की मन्द-मन्द लहरियाँ नवजीवन का संचार कर रही है, हे भद्र! उठो, निद्रा छोडो, पुरुषार्थ करो और इष्ट साध्य को प्राप्त करो। भाव-जागरण का यह सुनहरा अवसर है। मोह की रात्रि दूर हुई, अज्ञान का अँधेरा हट गया, सम्यक्त्व का सूर्योदय हुआ, आत्मा की गुण-लहरियों में स्पन्दन हुआ, यों वातावरण अनुकूल है, अब प्रमाद की नींद को छोडकर जागृत बनो, मोक्ष तुम्हारे नजदीक है। यही आज के मंगलमय पर्युषण पर्व के प्रभात का भव्य प्रेरणास्पद संदेश है।

पर्वाधिराज पर्युषण :

जिस प्रकार तीर्थों में शत्रुंजय तीर्थ, मंत्रों में नवकार मंत्र पर्वतों में सुमेरु पर्वत, समुद्रों में स्वयं भू-रमण समुद्र प्रधान और महान् है उसी तरह सब पर्वों में पर्व-मुकुट-मणि पर्वाधिराज पर्युषण पर्व प्रधान और महान् है।

सामान्य दिनों की अपेक्षा पर्व-दिनों में विशेष उत्साह परिलक्षित होता है। जीवन के दैनन्दिन कार्य-कलापों में नवीन उल्लास का संचार करने हेतु पर्वों की आयोजना हुई है। पर्व-दिनों में नवीनता, उल्लास और स्फूर्ति का अनुभव होता है। वैसे तो विभिन्न देश-काल की अपेक्षा से नाना प्रकार के पर्व हैं परन्तु सामान्यतया हम उन्हें दो वर्गों में विभा-जित कर सकते हैं, वे हैं लौकिक पर्व और लोकोत्तर पर्व। सांसारिक आमोद-प्रमोद की वृद्धि करने वाले पर्व लौकिक

पर्व है और आत्मा को अभ्युदय के मार्ग पर चलने की प्रेरणा करने वाले लोकोत्तर पर्व हैं। पर्वाधिराज पर्युषण पर्व महान् लोकोत्तर पर्व है। यह आत्मा के अभ्युत्थान का साधन है।

जिस प्रकार कोई महान् व्यक्ति कोई राजा या कोई मिनिस्टर (मंत्री) आपके घर आने वाला हो तो उसके सत्कार–सम्मान और स्वागत के लिए आप कितने उत्साह के साथ तैयारियाँ करते हैं, आसपास की गन्दगी दूर कर स्वच्छता करते हैं, नाना प्रकार की सजावट करते हैं, विविध प्रकार के द्वार बनाते हैं और तोरण-वन्दनवारों से उन्हें सजाते हैं, विविध हार–उपहार आदि संचित करते हैं और न जाने कैसी–कैसी तैयारियाँ बड़े उत्साह के साथ सम्पन्न करते हैं? उस स्वागत के आने के पूर्व भी उत्साह रहता है, वह आता है तब भी उत्साह रहता है। इसी तरह पर्वाधिराज पर्युषण का जीवन के आँगन में पदार्पण हुआ है। हमें भावना से हृदय से उसका स्वागत करना है। हृदय के आँगन को, मन के मन्दिर को, साफ सुथरा करना है अन्तःकरण में छिपे हुए मोह की अज्ञानता के अन्धकार को दूर कर विवेक–ज्ञान की ज्योति जगाना है, आत्मा की विभाव-परिणतियों को हटाकर स्वाभाविक गुण–रूप शांति से आत्मा को सजाना है।

पूर्व संस्कारों के कारण अथवा विकारों की प्रबलता के कारण मानव स्वभाव की विभिन्न श्रेणियाँ हैं। कोई प्राणी ऐसे हैं, जो स्वभावतः शुभ कार्यों के प्रति आकर्षित हुए हैं

और सदा शुभ अनुष्ठानो मे लगे रहते है; कोई प्राणी ऐसे है जो थोडी सी प्ररणा पाकर शुभ कार्यो मे लग जाते है और कोई ऐसे प्राणी है, जिन्हे तीव्र प्रेरणा की आवश्यकता होती है। कोई ऐसे भी है जिन्हे बार-बार प्रेरणा मिलते रहने पर भी धर्म कार्यो के सन्मुख नही होते है। जो प्राणी स्वभावत धर्म के प्रति अनुरागी होते हैं वे प्रतिदिन धर्मानुष्ठान मे लगे रहते है उनके लिये बारह मास पर्व दिन है। जैसे कि कहा गया है.-

"सदा दिवाली संत के बारह मास वसन्त"

जो व्यक्ति थोडी सी प्रेरणा से धर्म के प्रति सावधान हो जाते है वे अष्टमी, चतुदशी, पाक्षिक आदि तिथियो प धर्म की आराधना करते है। जिन्हे विशेष प्रेरणा व आवश्यकता होती है वे चौमासी पक्खी, पर्युषण आदि प क दिनो मे धर्म की आराधना करने में प्रवृत्ति करते हैं। उ इन पर्व दिनो म भी धर्म की साधना करने से वचित रहते वे अत्यन्त निम्न कोटि के समझे जाते है। इसी बात को इ तरह भी कहा जाता है-जो सदैव धर्म की आराधना करने वे सहैया जो कभी २ अष्टमी, चतुर्दशी को धर्म की आराध करते है वे वदया, और जो केवल भाद्रपद मास में श्रय पर्युषण पर्व में धर्माराधन करते हैं वे भईया कहे जाते है।

उक्त बात का फलितार्थ यह होता है कि इस पर्व का निमित्त पाकर अनेक प्राणी आत्म-कल्याण के पथ पर अग्रसर होते है। हम जैन कुल मे जन्मे है, पर्युषण हमारा पवित्र

पर्व है, इन दिनों में धर्माराधन करना हमारा कुलाचार है, इन दिनों में यदि धर्मस्थानों में, मन्दिर उपाश्रय में नहीं जायेंगे तो अच्छा नहीं लगेगा इत्यादि भावनाओं से प्रेरित होकर भी कई व्यक्ति धर्म की आराधना हेतु तत्पर होते हैं। जहाँ तक इस प्रकार का धर्म की बात है तब तक वह कल्याण का द्वार खुला हुआ है। जब यह धर्म भी नहीं आती है तब कल्याण के द्वार बन्द हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पर्व का निमित्त पाकर अनेक भव्य प्राणी आत्मा का उत्थान करने में प्रवृत्त होते हैं। आत्मकल्याण करने का यही सुनहरी अवसर आज इस पर्व समय उपस्थित है। पर्वाधिराज पर्युषण, धर्म की मौसम है। व्यापारी लोग मौसिम के दिनों में परिश्रम करके धनोपार्जन कर लेते हैं और फिर वर्ष भर सुख पूर्वक जीवन निर्वाह करते हैं, उन्हें विशेष दौड़-धूप की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। जो व्यापारी मौसम में उद्यम पूर्वक कमाई कर लेता है, वह वर्ष भर प्रसन्न रहता है। इसी प्रकार जो आराधक पर्युषण पर्व का धार्मिक मौसम का सदुपयोग करके लाभ ले लेता है वह आत्मकल्याण का सुन्दर अवसर पा लेता है और जो प्रमाद के कारण इसे यों ही खो देता है वह आत्म कल्याण की सुनहरी घड़ी को हाथ से खो-गँवा देता है।

[illegible] :

की है:— (१) चैत्र मास की (२) अषाढ मास की (३) पर्युषण पर्व की (४) आसोज मास की (५) कार्तिक मास की और (६) फाल्गुन मास की। इन छह अट्टाह्निकाओ का भाव पूर्वक समाराधन करना चाहिये। उक्त छह अट्ठाइयो में से आसोज और चैत्र मास की दो अट्ठाइयाँ शाश्वत कही गई हैं। उत्तराध्ययन सूत्र की बृहद्वृत्ति में ऐसा उल्लेख किया गया है।

इन दो शाश्वत अट्ठाइयो के दिनो में भुवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक चारो प्रकार के देव और देवियाँ तथा विद्याधर आदि नन्दीश्वर द्वीप में जाकर जिनेश्वर भगवान की बहुमान पूर्वक भक्ति करते हैं और भव्य महोत्सव मना कर अपने दिव्य जन्म की सफलता समझते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी इन शाश्वत अट्टाह्निकाओ में आयंबिल की तपश्चर्या पूर्वक नवपद का भक्तिभाव पूर्वक समाराधन करते हैं। श्रीपाल राजा और मयणासुन्दरी की तरह नवपद ओली का भावपूर्वक समाराधन करना इस भव में भी मंगलकारी होता है और परभव में भी महान् शुभ फल का प्रदाता होता है। इन दो शाश्वत अट्टाह्निकाओं का [illegible] किया गया [illegible]

बारा मा [illegible]

ऐरवत और पांच महाविदेह—यों १५ कर्म भूमियां मानी गई हैं जहां धर्म-कर्म आदि की प्रवृत्तियां हैं। जम्बूद्वीप में १ भरत, १ ऐरवत और १ महाविदेह है। धातकी खंड में २ भरत, २ ऐरवत और २ महाविदेह हैं। अर्द्ध पुष्कर वर द्वीप में भी २ भरत, २ ऐरवत और २ महाविदेह हैं। इस प्रकार अढ़ाई द्वीप प्रमाण मनुष्य क्षेत्र में ५ भरत, ५ ऐरवत और ५ महाविदेह हैं। ५ महाविदेह क्षेत्र में सदा धर्म की प्रवृत्ति है। वहां हमेशा तीर्थंकर देव विद्यमान रहते हैं। वहां सदाकाल चतुर्विध संघ विद्यमान रहता है। वहां का क्षेत्रानुभाव ही ऐसा है कि वहां भरत क्षेत्र के चौथे आरे जैसा सदाकाल रहता है। वहां के लोग ऋजुप्राज्ञ हैं। अतएव वहां के साधु साध्वियों का आचार भी यहां से भिन्न है। वे जब पाप लगता है तब प्रतिक्रमण करते हैं जब दोष नहीं लगता है तो प्रतिक्रमण नहीं करते हैं। इसलिए यहां जैसा देवसी, रात्रि, पाक्षिक, चातुर्मासिक या सांवत्सरिक प्रतिक्रमण का अनिवार्य विधान वहां नहीं है। इसलिये महाविदेह क्षेत्र में चार [illegible] की आवश्यकता नहीं है। ५ भरत और ५ ऐरवत क्षेत्र में [illegible] की आवश्यकता मानी गई है।

भरत और ऐरवत क्षेत्र में सदा एक-सा समय नहीं होता है। यहां काल और काल का परिवर्तन होता रहता है। यहां उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के छह-छह आरे होते हैं। [illegible] है, जैसे [illegible] होते हैं। इसलिये क्षेत्र और काल के [illegible] [illegible] और [illegible] की बहुत सी [illegible] गई है।

भस्म किया। (३) उत्तम आराधना की पर, साधु पुरुषों पर, संकट आने पर उनकी रक्षा के निमित्त देव मनुष्य लोक में आते हैं और (४) तीर्थंकर देवों के कल्याणकों के अवसर पर, महाविदेह क्षेत्रों को जाने के लिये, सुगन्ध दान आदि के समय गुरु-पूजा पुष्प वृष्टि आदि के लिये तथा जैन धर्म के प्रभाव के हेतु देव यहां आते हैं।

नन्दीश्वर में चंद्र और नाग भवन के निकट देव आते हैं, [illegible] करते हैं, कल्याणक आदि [illegible] पूर्व [illegible] नहीं [illegible] है। [illegible], [illegible] और [illegible] परन्तु [illegible] नहीं है। इस प्रकार [illegible] में [illegible] है परन्तु [illegible] [illegible] नहीं [illegible] है।

[illegible]

श्री जीवाभिगम सूत्र मे कहा गया है कि—"श्री नदीश्वर द्वीप में भुवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव देवियाँ तीनो चौमासी और पर्युषण की अट्ठाइयो का अत्यन्त उल्लास और भक्ति बहुमान पूर्वक महा महिमाशाली महोत्सव मनाते हैं।" इस पर से समझा जा सकता है कि इन पर्युषण पर्व की आराधना का कितना अधिक महत्त्व है।

मानव भव: एक अपूर्व अवसर

धर्म की आराधना ही पर्व की आराधना है। धर्म की आराधना का अपूर्व अवसर हम सब को प्राप्त हुआ है। इस महा दुर्लभ मानव भव में ही धर्म की आराधना सम्भव है—अन्यत्र कही नही। देवयोनि में भोगो की ही प्रधानता है। त्याग प्रत्याख्यान नही है, न सामायिक न प्रतिक्रमण, विरति का नामनिशान तक नही है। तीर्थंकर देवाधिदेव के समवसरण में देव व्याख्यान श्रवण हेतु आते ह तब भी वैक्रिय शरीरधारी होते हैं, तप त्याग सयम की आराधना औदारिक शरीर से ही सम्भव है।

शास्त्र में कहा गया है कि चार कारणो से देव मनुष्य लोक में आते हैं—(१) राग के कारण—पूर्व भव के राग-संस्कारो की प्रबलता होने से देव मनुष्य लोक में आते हैं; यथा गोभद्र सेठ का जीव देवलोक से शालिभद्र के लिये सुखोपभोग की सामग्री भेजता था। (२) द्वेष के कारण से—यथा द्वैपायन ऋषि के जीव ने पूर्वकृत निदान से द्वारिका का

धारण किया। (३) उत्तम आत्माओं पर, साधु पुरुषों पर, संकट आने पर उनकी रक्षा के निमित्त देव मनुष्य लोक में आते हैं और (४) तीर्थंकर देवों के कल्याणकों के अवसर पर, महात्मा तपस्वियों की भक्ति के लिए, सुपात्र दान आदि के समय सुवर्ण-वृष्टि पुष्प वृष्टि आदि के लिए तथा [illegible] धर्म के प्रभाव से प्रभु देव यहाँ आते हैं।

यद्यपि सम्यग्दृष्टि और [illegible] देव आते हैं, [illegible] करते हैं, [illegible] आदि [illegible] पूर्ण करते हैं परन्तु [illegible] का परिमाण [illegible] नहीं होता है। [illegible] और [illegible] हैं परन्तु [illegible] नहीं है। इस प्रकार [illegible] में विपुल पुण्यवान हैं परन्तु [illegible] अधिक [illegible] नहीं करते हैं।

[illegible]

[illegible]

केवल मनुष्य-शरीर ही ऐसा सुअवसर है जहाँ धर्म की आराधना के स्वर्ण अवसर सुलभ है। मानवता, पंचेन्द्रियों की परिपूर्णता, आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल-जाति, धर्म श्रवण की अनुकूलता, विवेक शक्ति (समझ), त्याग प्रत्याख्यान करने की शक्ति और रत्नत्रय की आराधना-ज्ञान, दर्शन, चारित्र की परिपूर्णता और निर्वाण प्राप्ति की योग्यता केवल मनुष्य में ही है। इतनी सारी अनुकूलताएँ आप सबको मिली हुई हैं। यह कितना बड़ा सौभाग्य है आपका! इतनी अधिक अनुकूलताएँ होने के कारण मोक्ष आपके नजदीक ही है। आवश्यकता है केवल अप्रमत्त भाव से त्याग और संयम आराधना की।

आदिनाथ भगवान् ऋषभदेव स्वामी ने अपने ९८ पुत्रों को सम्बोधित करते हुए कितना मार्मिक उपदेश दिया है—

संबुज्झह किन्न बुज्झह, सम्बोही खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हवणमन्ति राईओ नो सुलहं पुणरावि जीवियं॥

—सूत्रकृतांगसूत्र

"हे भव्यो! समझो! क्यों नहीं समझते हो? मनुष्य भव के अतिरिक्त दूसरी जगह अन्य गतियों में ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। तुम्हें आत्मविकास की बहुत अधिक अनुकूल सामग्रियाँ मिली हुई हैं। स्वर्ण-अवसर तुम्हारे हाथों में है। जो समय चला जा रहा है, वह वापस लौटने वाला नहीं है। ऐसा सुन्दर अवसर बार-बार मिलने वाला नहीं है। इसलिये इस प्राप्त सुअवसर से लाभ उठाओ! आत्म-विकास

के पथ पर अग्रसर हो जाओ। मोक्ष तुम्हारे नजदीक है। संसार-सागर के किनारे के नजदीक आ गये हो। अब तो जरा-सा पुरुषार्थ और कर लो बस बेड़ा पार है।'

इस मानव देह में संयम की साधना करके ज्ञान-दर्शन चारित्र की परिपूर्ण आराधना करके अनन्त जीव पूर्व में मोक्ष को प्राप्त कर चुके हैं। कई जीवों ने सर्वार्थ सिद्धि विमान में तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति के लिए [illegible] को प्राप्त किया है। ऐसा माना जाता है कि यदि इन जीवों की एक [illegible] की स्थिति और [illegible] की आयु और अधिक होती तो वे मोक्ष में चले जाते। [illegible] के कारण वे मोक्ष में न जाकर सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए हैं। [illegible]

[illegible] है -

"[illegible]"

[illegible]

[illegible]

इस बहुमूल्य नर-भव को प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ करना चाहिये। इसमें ही नर-भव की सार्थकता है। तप संयम की साधना के लिए यह स्वर्ण-अवसर है। खाने-पीने या भोग में रस लेने के लिये मानव-शरीर नहीं है। ऐश-आराम में मानव जीवन को बिता देना सोने की थाली में लोहे की मेख लगाने के समान है अथवा सोने के पात्र में मदिरा भरने के समान मूर्खतापूर्ण है। अतएव मानव-तन को पाकर दान-शील-तप भावना रूप धर्म की आराधना करनी चाहिये।

यह आराधना प्रतिदिन हो तो बहुत ही अच्छी बात है परन्तु यदि प्रमाद वश हमेशा न बन सके तो पर्व-दिवसों में तो अवश्य ही धर्म की आराधना की जानी चाहिये।

किश्तों का चुकारा :

किसी कुलीन व्यक्ति ने किसी साहूकार से कर्ज लिया। स्थिति ऐसी हो गई कि कर्ज का एक मुश्त चुकारा करने की शक्ति उस व्यक्ति में नहीं रही। व्यवहार की सचाई के खातिर कर्ज का चुकारा होना ही चाहिये। स्वाभिमानी और कुलीन व्यक्ति अपने सिर पर किसी का कर्जा रखना पसन्द नहीं करता। वह कर्ज को बोझ समझता है और उसे हल्का करने का प्रयास करता है। सुविधा के खातिर उसने साहूकार से कहा कि मैं एक मुश्त तो कर्ज चुकाने की स्थिति में नहीं हूँ परन्तु कर्ज का बोझा सिर पर रखना भी न

नहीं चाहता अतः आप थोड़े-थोड़े समय के अन्तर की किश्तें कर दो ताकि मैं थोड़े-थोड़े और धीरे-धीरे देकर कर्ज मुक्त हो जाऊं। साहूकार ने यह मान लिया। किश्तों के द्वारा कर्ज का चुकारा सुविधा से हो गया।

हम सब धर्म रूपी साहूकार के कर्जदार हैं। हम प्रतिदिन धर्म की आराधना करके उसका कर्ज चुकाना चाहिये परन्तु ऐसा सामर्थ्य न होने पर साहूकार की भांति हमें पर्व दिनों में धर्म-आराधना करने की किश्तों के द्वारा कर्ज का चुकाना चाहिये। पर्व दिन किश्तों के दिन हैं। [illegible] [illegible]

पर्व दिनों में धर्माराधन से आत्मोन्नति की संभावना है:

[illegible]

है। आयु का बंध पड़ते समय जिस प्रकार की भावना और जैसे शुभाशुभ अध्यवसाय होते है उन्ही के अनुसार शुभ या अशुभ आयु का बंध पड़ता है। अतः भवभीरु मुमुक्षु आत्माओ को पर्व के दिनो मे विशेष रूप से धर्म की आराधना के प्रति सावधानी रखनी चाहिये ताकि अशुभ आयु के बंध की संभावना को टाल सके।

जिस प्रकार वार्षिक परीक्षा के समय छात्र सावधानी रखता है तो उत्तीर्ण हो जाता है और असावधानी करता है, गफलत करता है तो वर्ष बेकार चला जाता है इसी प्रकार आयुष्य कर्म के बंध के प्रति पूरी २ सावधानी रखी जानी चाहिये। अशुभ आयु का बंध टाला जा सके इसके लिये पर्व तिथियो पर शुभ अध्यवसाय रखते हुए धर्म की आराधना करना चाहिये। पर्व तिथियो मे आरम्भ समारम्भ के कार्य नही करने चाहिये; पर्व तिथियो मे हरे शाक-सब्जियो और फल-फूलो का सेवन नही करना चाहिये शक्ति अनुसार तप करना चाहिये। अठारह देशो के राजा कुमारपाल ने वर्षा-चातुर्मास के चारो महीनो के लिये हरे शाको का त्याग कर दिया था, वह एकासना तप करता था, उसने केवल १ विगय रखी थी शेष का प्रत्याख्यान कर दिया था। विशाल राज्य का स्वामी होते हुए भी कुमारपाल राजा ने अपना जीवन कितना धर्ममय बना रखा था यह उपरोक्त बातो से विदित होता है।

के क्षयोपशम के अनुसार होती है। पुण्य की प्राप्ति धर्माराधन से होती है। धर्म की आराधना के बिना पुण्य की राशि संचित नहीं हो सकती और पुण्य के बिना धन की प्राप्ति नहीं हो सकती। आप लोगो को अपने आप पर, अपने धर्म पर, अपने पुण्य पर विश्वास नहीं है, श्रद्धा नहीं है। महापुरुषो ने कहा है कि 'धर्मसिद्धे ध्रुवा सिद्धि' अर्थात् धर्म की साधना करने से अवश्य ही सफलता प्राप्त होती है। इस वचन पर आपकी श्रद्धा नहीं है। परन्तु यह ध्रुव सत्य है। कूप में जल होगा वही क्यारे में आवेगा, टंकी में जैसा जल होगा वही नलो में आवेगा। इसी तरह धर्म और पुण्य की राशि संचित होगी तो ही व्यापार आदि मे लाभ प्राप्त होगा। अतएव 'धर्मसिद्धे ध्रुवासिद्धि' की बात पर विश्वास रखकर इन पर्व दिनो में अपने व्यापार-धंधों को बन्द रखकर, सावद्य आरम्भ समारंभो को छोड़कर, तप-त्याग और अहिंसा धर्म की आराधना में संलग्न रहना चाहिये। ज्ञान दर्शन-चारित्र की आराधना अन्तःकरण पूर्वक करते हुए पर्व को सफल बनाना चाहिये।

'स्याद्वादाभयदोतामै' :

प्रारंभ में जो श्लोक कहा गया है उसमें तीर्थंकर देव के लिये 'स्याद्वादाभयदोतामै' विशेषण दिया गया है। तीर्थंकरदेव स्याद्वाद सिद्धान्त के महान प्रवर्तक हैं और अभयदान के सर्वश्रेष्ठ उपदेष्टा हैं। [illegible] उपदेष्टा [illegible]

अपने जीवन में अहिंसा और स्याद्वाद का आचरण कर जगत् के जीवों के समक्ष उन्होंने अहिंसा और अनेकान्त का व्यावहारिक आदर्श उपस्थित किया है।

भगवान महावीर देव की स्तुति करते हुए सूत्रकृतांग में कहा गया है—

उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसा य जे थावर जे य पाणा ।
से णिच्चणिच्चेहि समिक्खपन्ने दीवे व धम्मं समियं उदाहु ॥

ऊँची, नीची और तिरछी दिशाओं में जो भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं, वे सब नित्य-अनित्य हैं। [illegible] जीव-[illegible] नित्य है। [illegible] पर्याय-[illegible] है, [illegible] अनित्य है, [illegible] [illegible]। [illegible] द्वारा [illegible] किया है। [illegible] [illegible] किया है। [illegible] [illegible] है।

उक्त गाथा में प्रभु महावीर स्वामी को स्याद्वाद के और अहिंसाधर्म के महान् प्रवर्त्तक और उपदेष्टा के रूप में निरूपित किया है। वस्तुत तीर्थङ्करो द्वारा प्ररूपित जैन धर्म के ये दो मौलिक सिद्धान्त है। आचार में अहिंसा और विचार में स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) जैन धर्म की मौलिक विशेषता है। इन्ही दो विशेषताओ को सूचित करने के लिए "स्याद्वादाभयदोतमं." विशेषण प्रयुक्त किया गया है।

स्याव्दाद का महत्व :

अनन्त ज्ञानियो ने वस्तु का स्वरूप अनन्त धर्मात्मक बताया है। प्रत्येक पदार्थ मे अनन्त धर्म हैं। पदार्थ की इस विभिन्न धर्मात्मकता के कारण ही उसका ज्ञान भी विविध रूपों मे होता है। विभिन्न दृष्टिकोणो से एक ही वस्तु विविध रूपो मे दृष्टिगोचर होती है। यही सब मतभेदो का मूल होता है। सभी धर्मों, पन्थो, दर्शनो और मतो मे जो अन्तर पाया जाता है उसका कारण भी दृष्टिकोण का अन्तर ही है। कोई दर्शन आत्मा को मानते हैं, कोई धर्म-दर्शन आत्मा को नही मानते, कोई आत्मा को नित्य मानते हैं, कोई अनित्य मानते है। कोई आत्मा को कर्ता मानते हैं, कोई अकर्ता मानते है। कोई आत्मा को व्यापक मानते हैं, कोई देह-परिमाण। इस प्रकार विभिन्न मान्यताओं के कारण सब [illegible]-धर्म-दर्शन वाद परस्पर में विवाद करते हैं सब अपने-अपने पक्ष को [illegible] मानकर दूसरे पक्ष को मिथ्या और असत्य बताते हैं। इस

[illegible] और [illegible] करता है। [illegible] है और कपड़ा का व्यापार होता है। आध्यात्मिक दृष्टि से जब हम देखते हैं तो विदित होता है कि [illegible] हो उस को समझ [illegible] देने की [illegible] है। [illegible] करता है। [illegible] का [illegible] है। [illegible] का [illegible] है। जो [illegible] है [illegible] में अनुसार [illegible], [illegible] आदि [illegible] है। [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] है। [illegible] है।

[illegible]

कर उनमे सम्मिलन करा देता है। इसी को जैन परिभाषा मे विभिन्न मतो का समवसरण कहा जाता है।

विचार भेद होते हुए भी, मत भेद होने के बावजूद भी मन-भेद न हो यह स्याद्वाद का हमारे दैनिक जीवन मे सदुपयोग है। स्याद्वाद का सिद्धान्त हमे आपस में प्रेम भाव से रहने की प्रेरणा देता है। विरोधियो के साथ भी सह-अस्तित्व की शिक्षा देता है।

आज का युग सगठन और एकता का युग है। सगठित होकर हम शक्तिशाली हो सकते है। विभक्त रह कर हम क्षीण होते हैं। अत आवश्यकता है कि हम स्याद्वाद के मर्म को समझे और परस्पर प्रेम का विस्तार करके जैनशासन को शक्ति सम्पन्न बनावें। स्याद्वाद का अमोघ कवच हमें सब विरोधो के प्रहार से बचावेगा। इस महान् रसायन से पुष्ट होकर आप विश्व मे जैन-शासन की वैजयन्ती फहरा सकेंगे।

आत्मवाद और कर्मवाद :

आत्म-कल्याण के अभिलाषी मुमुक्षुओं को आत्मा और कर्म के स्वरूप को भलीभाति समझ लेना चाहिये। जैन दर्शन में आत्म तत्व की गहरी विवेचना की गई है। आत्मा का स्वरूप बताते हुए कहा गया है –

यः कर्ता कर्मभेदानां भोक्ता कर्मफलस्य च ।
संसर्ता परिनिर्वाता ह्यात्मा नान्य लक्षणः ॥

श्री हरिभद्रसूरिजी म (शास्त्रवार्ता समुच्चय)

जैन शास्त्रानुसार आत्मा कर्मों का कर्ता है और कर्म-फल का भोक्ता भी है। वह संसार में भ्रमण करने वाला और कर्मबन्धन से मुक्त होने वाला भी है।

[illegible]

बौद्ध दर्शन एकान्त अनित्यवादी-क्षणक्षयवादी दर्शन है । उसके मत से प्रत्येक पदार्थ क्षण क्षण मे सर्वथा नष्ट होता रहता है और नया नया उत्पन्न होता रहता है । यह अनात्मवादी दर्शन है । यह मान्यता भी विचार की कसौटी पर सही नही उतरती है । ऐसा मानने पर स्वर्ग-नरक, बध-मोक्ष की और लेन देन की व्यावहारिक व्यवस्था भी नही बनती है । क्योंकि यदि प्रथम क्षण मे ही पदार्थ नष्ट हो जाता है तो जिस पदार्थ ने क्रिया की वह उसका फल भोगे बिना ही नष्ट हो गया और जिसने फल भोगा उसने वह कर्म किया ही नही । जिसने दिया और जिसने लिया वे दोनो यदि क्षण मे सर्वथा नष्ट हो जाते है तो देने लेने वाले दूसरे ही हो जाते हैं । जिसने लिया नही उसे देना पडता है और जिसने लिया वह उसी क्षण नष्ट हो गया । यह सारी अव्यवस्था हो जाती है अत कृतकर्म का प्रणाश और अकृतकर्म का भोग दोष होने के कारण क्षणभगवाद मानना ठीक नही है ।

जैन दर्शन दोनो एकान्तवादो का निराकरण कर सम्यक् समाधान कर देता है कि आत्मा द्रव्य की अपेक्षा नित्य है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है अतएव वह परिणामी नित्य है । ऐसा मानने से ही लोक-परलोक, बध मोक्ष, लेन देन आदि की सारी व्यवस्था सुचारु रूप से सगत होती है ।

जैन दर्शन का कर्मवाद भी प्रमाणोपेत और तर्क सगत है । वह कहता है कि ससार की विचित्रता का कारण कर्म का

इन तीनो की सम्यग् विचारणा और सम्यक परिणति ही सर्वोदय है।

आत्मा का स्वरूप जानकर मुमुक्षु आत्माओ को सब प्रकार की हिंसा और कर्मबन्धनो से विरत होना चाहिये। संसार के सब प्राणियो को आत्मवत् समझ कर किसी को मनसा, वाचा, कर्मणा दुख न देना अहिंसा है। हमे सुख प्रिय है, दुख अप्रिय है, जीवन प्रिय है मरण अप्रिय है। इसी तरह सब प्राणियो को सुख और जीवन प्रिय है, दुख और मरण अप्रिय है; ऐसा जानकर हिंसा से निवृत्त होना चाहिये। सब जीवो को आत्म-तुला पर तोलो। यही परम धर्म है। यही तीर्थङ्कर देवो के उपदेश का सार है। कहा गया है—

> एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचण।
> अहिंसा समयं चेव एयावंतं विजाणिया॥

ज्ञानी के ज्ञान की सार्थकता इसी मे है कि वह किसी प्राणी की हिंसा न करे। अहिंसा ही सब सिद्धान्तो का सार है।

अहिंसा और स्याद्वाद के उपदेष्टा तीर्थङ्कर देवो ने षट् अष्टान्हिका कही है। पहले कहा जा चुका है कि आसोज और चैत्र मास की अष्टान्हिका शाश्वती है। उनमें देव श्री नन्दीश्वर द्वीप में जाकर भव्य और दिव्य महोत्सव की आयोजना करके जिनेश्वर देव की बहुमान एवं भक्ति पूर्वक पूजा-आराधना करते है। मनुष्यलोक में श्रावक-श्राविकाएं

सार्वभिक रूप में सिद्ध रूप की एवं महावीर की साधना करता है।

लोयपद निरूपण :

अरहंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और साधु ये पंच परमेष्ठी कहलाते हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—ये चार लोक के प्रधान अंग होने के कारण इनका उल्लेख है। जैसा कि कहा गया है—

> नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा।
> एस मग्गो त्ति पण्णत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं॥

[illegible]

[illegible]

अन्तर्गत है। आचार्य श्री हरिभद्रसूरि ने इसीलिये कहा है—

भवबीजांकुर-जनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णु र्वा हरो जिनो वा नमः तस्मै॥

अर्थात्—भव रूपी बीज के अकुर उत्पन्न करने वाले राग—द्वेष आदि जिनके क्षय हो चुके हैं उन्हें मेरा नमस्कार है फिर भले ही वह ब्रह्मा, विष्णु, शकर या जिन हो।

कितनी उदारता है इस पच परमेष्ठी—पद मे!

उक्त पाच पदो मे अरिहन्त और सिद्ध अनन्त केवलज्ञान के स्वामी होने से ज्ञान के प्रतीक है। आचार्य चारित्राचार के धनी होने से चारित्र के प्रतीक हैं। उपाध्याय सूत्र-सिद्धान्त के पाठक होने से तथा धर्म से डिगते हुए प्राणियो को स्थिर करने के कारण दर्शन के प्रतीक है और साधु भगवन्त तपाचार मे निष्णात होने से तप के प्रतीक है।

अन्य विवक्षा मे इन नव पदो का देव, गुरु, धर्म में समावेश किया जाता है। अरिहन्त और सिद्ध पद का देव मे, आचार्य, उपाध्याय और साधु को गुरु मे और ज्ञान-दर्शन चारित्र-तप का धर्म में समावेश हो जाता है। अरिहन्त मुक्ति के मार्ग दर्शक है, सिद्ध मुक्ति मार्ग पर चलकर मजिल पर पहुच चुके है, आचार्य मुक्तिमार्ग के पथिको के नेता है, उपाध्यायजी मुक्तिमार्ग के शिक्षादाता है और साधु—मुनिराज हाथ पकड कर मुक्ति मार्ग पर अग्रसर करने वाले है।

इन परम उपकारी, [illegible] एवं परमेष्ठी भगवान की आराधना [illegible] में [illegible] पूर्वक की जाती है ताकि हमारी आत्मा भी उनके पद चिन्हों पर चलकर अपने परम और [illegible] को प्राप्त कर सके।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अब क्रमश इन पाच कर्त्तव्यो के विषय मे विस्तार से प्रकाश डाला जाता है ताकि इनके सम्बन्ध में विशेष जानकारी हो सके और इनके आचरण का मार्ग प्रशस्त बन जाय।

अमारि – प्रवर्तन:

विश्व मे सर्वाधिक प्रिय वस्तु अपना प्राण है और सर्वाधिक अप्रिय वस्तु मौत है। ससार के सब प्राणी–चाहे वे त्रस हो या स्थावर–जीवित रहना चाहते है, मरना कोई नही चाहता। प्राण सबको प्रिय है, मौत सबको अनिष्ट है। इस वास्ते प्राणरक्षा रूप अहिसा सबसे बडा धर्म है और प्राणातिपात–हिसा सबसे बडा पाप है। इसलिये आचाराग सूत्र में तीर्थङ्कर भगवान् ने फरमाया है,

"से बेमि जे अईया, जे य पडुपन्ना, जे य आगमिस्सा अरहता भगवंतो, ते सव्वे एवमाइक्खंति, एव भासति, एवं पण्णविंति, एवं परूविंति–सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा सव्वे सत्ता, न हंतव्वा, न अज्जावेयव्वा, न परिघित्तव्वा, न परियावेयव्वा, न उद्दवेयव्वा। एस धम्मे, सुद्धे, निइए, सासए, समिच्च लोयं खेयन्नेहिं परेइयं।'

अर्थात्–भूतकाल मे जो अनन्त तीर्थंकर हो चुके है, वर्तमान मे बीस विहरमान तीर्थंकर है और आगामीकाल मे अनन्त तीर्थङ्कर होंगे वे सब ऐसा कहते है, ऐसा बोलते है, ऐसा बतलाते है, ऐसी प्ररूपणा करते है कि [illegible] आदि सर्व

प्राणियों को, वनस्पतिकाय तक भूतों को, पंचेन्द्रिय जीवों को और पृथ्वीकाय आदि सत्वों को मारना नहीं चाहिये, इन पर आज्ञा नहीं चलानी (हुक्म नहीं चलाना) चाहिए, इन्हें दास की तरह नहीं रखना चाहिये, इन्हें परिताप नहीं देना चाहिए, और इनका वध नहीं करना चाहिए। यही धर्म शुद्ध है, नित्य है, शाश्वत है। लोक के स्वरूप को जानकर अर्हत् भगवन्त ने यह धर्म प्रतिपादन किया है।'

'अहिंसा परमो धर्मः' इसे सिद्ध करने के लिये कुछ कहने की या प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक प्राणी का अनुभव ही इसके लिये पर्याप्त है। कोई प्राणी नहीं चाहता कि मैं मारा जाऊँ [illegible]

[illegible]

आतंकित रहता है। दूसरों की हत्या करने वाला स्वयं किसी का शिकार होता है, वैर से वैर की परम्परा बढ़ती है और भय से भय की वृद्धि होती चली जाती है। अभय से अभय की परम्परा बढ़ती है। अतएव स्वयं की सुरक्षा और निर्भयता के लिये भी दूसरों की रक्षा और अभयदान देना हितावह है।

अभयदान की महिमा बताते हुए कहा गया है—

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति।
तवेसु वा उत्तम बंभचेरं, लोगुत्तमे समणे णायपुत्ते॥

सब दानों में अभयदान प्रधान है सत्यों में निरवद्य वचन प्रधान है तप में ब्रह्मचर्य उत्तम है और लोक में श्रमण भगवान् महावीर देव सर्वोत्तम हैं।

धनदान, अन्नदान, पानदान, औषधदान, ज्ञानदान, सुपात्र-दान आदि समस्त दानों की अपेक्षा अभयदान सर्वश्रेष्ठ है अभय-दान मूल है और शेषदान उसकी रक्षा के लिये बाड़ के समान है। अन्नदान, पानदान आदि दान का प्रभाव क्षणिक होता है। कालान्तर में वह क्षीण हो जाता है। ज्ञान दान की सार्थकता अभयदान में ही है। 'एयं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ कंचणं' ज्ञान की सार्थकता अभयदान के कारण है। सुपात्र दान का महत्त्व भी अभयदान से ही है। अभयदान के दाता सद्गृहस्थ [illegible] साधु हों तो सुपात्र है। अभयदान के सामने लौकि-क स्वर्ग का इन्द्रासन भी नगण्य है। मारे जाते हुए प्राणी को यदि करोड़ स्वर्ण मुद्राएं या जीवनदान [illegible]

होते जा रहे है। पानी छानने का वस्त्र कजूसी से या उपेक्षा के कारण चाहिये वैसा गाढा और छेद रहित नही होता। गलने में छेद पड जाते है तो भी उसी से काम निकाला जाता है। उसे वदलने की तरफ ध्यान नही जाता। इसी तरह घर की सफाई के लिय रखी जाने वाली बुहारी मुलायम होनी चाहिये ताकि उससे जीवो की विराधना न हो। परन्तु आजकल श्रावक-श्राविकाएँ खोडे की बुआरी प्रयोग मे लाते हैं, यह भयकर भूल है। खोडे की बुहारी वापरना घर को कत्लखाना वनाने के समान है। आजकल आपलोग अपने शरीर को पोछने के लिये तो टर्किश टुवाल जैसा नरम और मुलायम वस्त्र का प्रयोग करते है, टेरेलीन के मुलायम वस्त्र पहनते है और दूसरी तरफ खोडे की बुहारी का प्रयाग करते है यह कितनी अविवेकता है। घर की सफाई के लिये मुलायम मुज की बुआरी, सन की या ऊन की पूजनी से काम लिया जा सकता है।

शास्त्रकारो ने फरमाया है कि यदि श्रावक-श्राविकाएँ उपयोग, विवेक और यतना से काम ले तो वे बहुत से पाप से बच सकते है। विवेक और उपयोग के अभाव मे गृहस्थ का घर जीवो का वध-स्थान बन जाता है। पहले असावधानी गदगी या प्रमाद के कारण जीवो की उत्पत्ति के प्रति ध्यान नही दिया जाता है और उत्पत्ति के बाद डी० डी० टी० पाउडर या अन्य मारक औषधियो का प्रयोग कर उनकी हिंसा की जाती है। यह कितना अविवेक है। -

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

जीवन प्रदान किया, राज्य भर मे करुणा का विस्तार किया और जैन-शासन को महान् प्रभावना की। सूरि-सम्राट और मुगल सम्राट् के सम्पर्क मे निमित्त बनी हुई सुश्राविका चम्पा बहिन का शुभ नाम भी इन पवित्र दिवसो मे स्मरण आये बिना नही रहता, जिसने अपनी छह मास की कठोर तपश्चर्या और विचक्षणता से अकबर बादशाह को अत्यधिक प्रभावित किया इसी चम्पा बहिन के द्वारा गुरुवर्य श्री हीर सूरिजी महाराज का गुणगान सुनकर अकबर बादशाह ने उन्हे आदर पूर्वक आमन्त्रित किया और उनके दर्शन एव धर्मश्रवण से प्रभावित होकर अभयदान का प्रवर्त्तन किया। वह घटना इस प्रकार है –

सुश्राविका चम्पा बहिन महा तपस्वी थी। वह तपस्विनी होने के साथ ही साथ मार्ग की ज्ञाता भी थी। उसने छह मास के लगातार उपवास की महा तपश्चर्या की थी। इतनी लम्बी तपश्चर्या इसके बाद किसी और ने की हो यह सुनने मे नही आया।

एक बार चम्पाबहिन दर्शन के लिये जा रही थी तब सघ भी महोत्सव पूर्वक साथ मे जा रहा था। वरघोड़े का दृश्य बड़ा मनोहर और भव्य था। सकल श्री सघ, बड़े बड़े अग्रगण्य नेता और विशाल जनसमूह का चल-समारोह (जुलूस) के रूप मे एक बहिन को धमधाम के साथ सम्मान पूर्वक ले जाते हुए देख कर सहज ही प्रत्येक जो उसके प्रति आकर्षण हो जाता था। सम्राट् अकबर ने भी यह जुलूस देखा और उसका ध्यान

विधि–विधान की समुचित व्यवस्था कर दी गई। बादशाह के विश्वस्त व्यक्ति उसकी दिनचर्या का सावधानी पूर्वक अवलोकन करते थे और बादशाह को खबर पहुँचाते थे। अपने विश्वस्त व्यक्तियों द्वारा जाँच करा लेने पर बादशाह की शंका का निवारण हो गया। ऐसी कठिन तपश्चर्या को देखकर बादशाह का हृदय हिल गया! एक दिन भूखा रहना कठिन होता है वहां लगातार छह मास तक गरम जल के सिवाय कुछ भी न खाना न पीना कितना बड़ा कमाल है! कितना अद्भुत पराक्रम है! बादशाह के हृदय में चम्पा बहिन के प्रति बहुत बहुमान पैदा हुआ। उसने बहुत सन्मान पूर्वक उसे बुलाकर पूछा कि–'इतना कठिन तप तुम किस के प्रभाव से कर सकती हो?'

चम्पा बहिन ने उत्तर दिया–'यह महिमा मेरी नहीं परन्तु मेरे देव और गुरु की कृपा का परिणाम है।' हमारे संघ में देव और गुरु का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है। देव गुरु का स्वरूप बताने के पश्चात् उसने कहा कि ऐसे गुरु वर्तमान में आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय हीर सूरीश्वरजी महाराज हैं।'

यह सुनकर बादशाह के मन में ऐसा विचार हुआ कि–'जिन गुरु के नाम–स्मरण मात्र से यह बाई इतना कठिन तप धैर्य पूर्वक प्रसन्नवदन रहकर कर सकती है, उन गुरु के दर्शन मुझे अवश्य करना चाहिये।'

महाराज को हैरान-परेशान किया था। उसे भान हुआ कि मैंने उस समय कितना बड़ा अपराध किया था। उसने उस प्रसंग की स्मृति दिलाते हुए आचार्य महाराज से क्षमा मांगते हुए कहा कि-'मैंने तो आपके प्रति पूर्व में बहुत ही असद्-व्यवहार किया है किन्तु आप उसका ध्यान न करते हुए मुझे क्षमा करें और मेरा कल्याण हो ऐसा कीजिये।'

आचार्य हीर सूरीश्वरजी महाराज ने कहा-'इस समय तो क्या, उस समय भी हमारे हृदय में तुम्हारे प्रति जरा भी असद्भाव नहीं आया। हम सब जीवों का कल्याण चाहते हैं, भले ही वह हमारे प्रति श्रद्धा रखे या असद्भाव रखे। हमारे मन में किसी के प्रति विद्वेष आता ही नहीं। हमने उस समय भी तुम्हारा कल्याण चाहा और इस समय भी कल्याण चाहते हैं। जैन साधु मारने वाले और पूजने वाले-दोनों पर समभाव रखते हैं।'

इस उत्तर को सुनकर सूबा बहुत ही प्रभावित हुआ और उसने बादशाह अकबर को लिखा कि-'फकीर तो बहुत देखे हैं परन्तु अबतक इनके जैसा फकीर देखने में नहीं आया।'

यथाक्रम विहार करते हुए आचार्य भगवंत फतहपुर पधारे जहाँ बादशाह था। वहाँ के संघ ने भव्य स्वागत किया। कहा जाता है कि स्वागत का जुलूस छह मील लम्बा था। सम्राट् अकबर ने सूरि सम्राट् का शानदार राजकीय स्वागत किया। अमीर-उमराव सामने गए। बड़ा ही शान-दार हुआ था वह।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

व्यक्त कर सकने मे उसने बहुत प्रसन्नता मानी थी। यह भी कहा जाता है कि वह १। सेर बकरे की जीभ प्रतिदिन खाता था। इतना हिंसा प्रेमी मुगल-शासक आचार्य भगवत श्री हीर-विजय सूरीश्वरजी म. के सम्पर्क मे आकर किस प्रकार दयावान बन जाता है यह उसके जीवहिंसा निषेध सम्बधी फरमानो से विदित हो जाता है।

एक बार सम्राट् अकबर ने गद्‌गद् होकर आचार्य महाराज से निवेदन किया कि—"मैंने आपको बहुत दूर देश से आमन्त्रित कर बुलाया, आपने पधार कर मुझे कृतकृत्य किया, धर्मोपदेश के द्वारा सही मार्ग बताया परन्तु आपने मेरी कोई चीज़ अब तक अगीकार नही की है अत कुछ भी माग कर आप मुझे कृतार्थ कीजिये।"

बादशाह के आग्रह को देखकर आचार्य महाराज ने अवसर पाकर कहा 'हमे किसी भौतिक पदार्थ की कामना नही है। हम तो यही चाहते है कि जगत के सब जीवो का कल्याण हो। तुम्हारा भी कल्याण हो और जीवो का भी कल्याण हो। इसलिये तुम्हारे पूरे राज्य मे जीव-हिंसा का निषेध होना ही चाहिये। बस यही हमारी एक माग है।'

फतहपुर के चातुर्मास मे आचार्य महाराज ने बादशाह को पर्युषणा के आठ दिन अमारि का उपदेश दिया। आचार्य महाराज की निस्पृहता और दयालुता देखकर उसने तत्काल 'आठ दिवस आपके और चार हमारी तरफ से यो बारह

[illegible]

[illegible]

[illegible]

हो सके, करना चाहिये । यह स्व-पर कल्याण का अमोघ साधन है अहिंसा भगवती की आराधना इहलोक परलोक मे परम मगलकारी है ।

साधर्मिक वात्सल्य :

श्री पर्युषण-पर्व के पाच सत्कर्त्तव्यो मे से दूसरा सत्कर्त्तव्य साधर्मिक वात्सल्य कहा गया है । "समान धर्मो येषा ते सार्धमिका" अर्थात् एक ही धर्म के अनुयायी परस्पर मे साधर्मिक कहलाते है स्वधर्मी बन्धुओ के प्रति प्रेम, वात्सल्य, बहुमान तथा भक्ति होना साधर्मिक वात्सल्य कहलाता है । धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण से साधर्मिक वात्सल्य का बहुत अधिक महत्व है । सघरचना और सघ की दृढता मे इस अग की महत्त्वपूर्ण भूमिका है । सघ की महनोयता इस बात से स्पष्ट है कि उसे शास्त्रकारो ने भगवान्' कहा है तथा नन्दी-सूत्र के प्रारभ मे विविध शुभ उपमाओ द्वारा सघ की स्तुति की गई है । "न धर्मो धार्मिकैविना" इस उक्ति से भी सघ का महत्त्व प्रतिभासित होता है । सघ के अन्तर्गत साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका का समावेश होता है इस चतुर्विध सघ की सेवा-शुश्रूषा करना, परस्पर मे सद्भाव, स्नेह और बहुमान रखना, भक्ति करना और निष्काम प्रीति रखना पारस्परिक सौहार्द रखते हुए एक दूसरे की सहायता करना साधर्मिक-वात्सल्य है । इस अग की आराधना करने से हृदय मे धर्म के प्रति श्रद्धा बढती है, दर्शन की शुद्धि होती है, हृदय मे विशालता आती है, अन्तःकरण मे सुकोमल भावनाओ का

[illegible]

[illegible]

[illegible]

वात्सल्य करने से साधर्मिक द्वारा आचरित सभी प्रकार के धर्मों के सेवन का लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिये एक तरफ सब प्रकार के धर्माचरण हों और दूसरी तरफ केवल साधर्मिक वात्सल्य हो तो भी उसकी समानता बताई गई है। कितना अधिक महत्त्व है साधर्मिक वात्सल्य का ! !

अपने कुटुम्बियों का, पुत्र-पुत्रियों का और सगे-संबंधियों का ध्यान रखना कौन बड़ी बात है। यह प्रवृत्ति तो तिर्यंचों में भी पाई जाती है वे भी अपनी सन्तान के प्रति ममताशील होते हैं। उनमें भी मोह-ममता देखी जाती है। मानव की विशेषता इसी में है कि वह मोह-ममता से ऊपर उठकर, स्वार्थ के संकीर्ण दायरे से निकल कर, परिवार के घेरे से बाहर आकर साधर्मिक बन्धुओं पर निष्काम प्रेमभाव रखे और तन-मन-धन से जरूरतमंदों की सहायता करे। धर्म के प्रति जितना प्रेम होगा उतने ही अनुपात में साधर्मिकों के प्रति बहुमान होगा जितना बहुमान होगा उसी के अनुसार भक्ति होगी। अपने इकलौते पुत्र पर जितनी प्रीति होती है उससे भी अधिक प्रीति साधर्मिक के प्रति होनी चाहिये।

भरत चक्रवर्ती का साधर्मिक वात्सल्य :

इस अवसर्पिणी काल में सर्व प्रथम साधर्मिक वात्सल्य करने वाले भरत चक्रवर्ती हुए। उनका उदाहरण मननीय और आचरणीय है।

छह खडो पर भरत ने विजय प्राप्त कर ली। चक्र-रत्न द्वार पर आकर रुक गया। चक्ररत्न अन्दर नही आया। कारण ज्ञात करने पर विदित हुआ कि भरत के छोटे भाई बाहुबलि ने अधीनता स्वीकार नही की है अत' विजय अपूर्ण होने से चक्ररत्न अन्दर नही प्रवेश कर रहा है। भरत ने बाहुबलि को अधीनता स्वीकार करने के लिये कहा। बाहु-बलिजी मे अपरिमित शक्ति थी। पूर्व भव मे उन्होने साधु-मुनिराजो की खूब वैयावृत्य की थी जिसके फलस्वरूप उनमे अपूर्व शक्ति विद्यमान थी। बाहुबलिजी ने भरत की चुनौती स्वीकार की। दोनो का द्वन्द्व युद्ध हुआ। ९६ करोड सैनिको का अधिपति, बत्तीस मुकुट बद्ध राजाओ का सिरमोर भरत बाहुबलि के पाव को तिलमात्र भी नही खिसका सका। इस प्रकार पाच युद्धो मे भरत की हार हुई। खीझ कर भरत ने चक्ररत्न छोडा परन्तु उसका बाहुबलिजी पर असर नही हुआ क्योकि चक्ररत्न का असर एक खून वाले अपने सबधियो पर नही होता। इसी बीच सहसा बाहुबलिजी की विचारधारा मे नवीन मोड आ जाता है। ज्यो ही उन्होने प्रहार के लिये मुट्ठी उठाई त्यो ही भावना परिवर्तित हो जाती है। वे सोचने लगे—'मेरे पिताजी ने दीक्षा ले ली, मेरे ९८ भाइयो ने भी दीक्षा ले ली, मैं राज्य के लिये अपने बडे भाई का प्रतीकार कर रहा हूं, यह उचित नही है। यह सोचते ही उन्होने उस उठी हुई मुट्ठी से ही बालो का लोच कर लिया और दीक्षित हो गये।

के राज्य की तनिक भी वाछा नही करते। वे तेरे भोग-निमन्त्रण को स्वीकार नही करते हैं।'

यह सुनकर भरत को निराशा हुई। उसने मन में सोचा—'मेरे भाई भोग स्वीकार नही करते है परन्तु मेरे द्वारा दिया गया आहार तो ले ही लेगे। यह विचार कर पाच सौ गाडो मे विविध खाद्य सामग्री लेकर भरत भगवान के समीप आये। भगवान् से प्रार्थना करने लगे-'प्रभो, आप सब मुनिराज यह आहार ग्रहण कर मुझे कृतार्थ करे।'

भगवान ने कहा—'भरत, मुनियो को इस प्रकार का आधाकर्मी (उनके निमित्त से तैयार किया गया) और सन्मुख लाया हुआ आहार नहीं कल्पता है। इसलिये यह आहार हम ग्रहण नही कर सकते हैं। राजपिण्ड भी मुनियो के लिये अकल्पनीय हैं।'

यह सुनकर भद्रिक हृदय वाले भरत विह्वल बन जाते है। उन्हे तीव्र ग्लानि का अनुभव होता है। मेरी कोई वस्तु इन मुनियो के उपयोग मे नही आ सकती है तो मैं कितना अधन्य हूँ।

भरत के मुख पर आत्म-ग्लानि की गहरी छाया देखकर भगवान् ने सान्त्वना देते हुए कहा कि—'भरत ! इस प्रकार ग्लानि न लाओ। मुनि कल्प के अनुसार तुम्हारा खाद्य सामग्री मुनिगण नही ले सकते है परन्तु तुम्हे उसम निराश होने की जरूरत नही है। तुम्हे [illegible]

को आराधना में उद्युक्त (उजमाल) रहना चाहिये। कहा गया है कि:—

'साहम्मी सगपण समु, अवर न सगपण कोय।
भक्ति करे साहम्मी तणी, समकित निर्मल होय॥'

समकित के आठ आचारो में वात्सल्य बताया गया समकित और धर्म श्रद्धा की दृढता के लिये साधर्मिक वात्स यथा शक्ति अवश्यमेव करना चाहिये। धन-सम्पत्ति सार्थकता इसी मे है। सासारिक प्रवृत्तियो मे, ज्ञाति ज कुटुम्बी, मित्र आढतिया आदि की सार सम्भाल में और अ ऐश-आराम में जो धन व्यय होता है वह अकारथ जाता उसका फल ससार की वृद्धि करने वाला है। इसके विपरं जिनेन्द्र देव के शासन में निरूपित धर्म क्रियाएँ करने वाल, तपश्चर्या करके जीवन को पवित्र करने वाले, सामायिक पौषध आदि धर्मक्रियाओ में लगे रहने वाले साधर्मिक भाइयो की भक्ति करने से धन की वास्तविक सफलता है। यह पुण्यानु-बंधी पुण्य है। पुण्य की परम्परा को बढाने वाला है। ऐश-आराम और सासारिक प्रवृत्तियो म किया गया खर्च पापानु-बंधी होने से अशुभ फल वाला है। यह जानकर भव्य आत्माओ को अपने धन का सदुपयोग साधर्मिक बन्धुओ के हितार्थ करना चाहिये। उन्हें यह समझना चाहिये कि साधर्मिक बन्धुओ की सेवा का लाभ महान् पुण्योदय से प्राप्त होता है। साधर्मिकों को अपने आगन में आया कल्पवृक्ष और अकाल

[illegible]

[illegible]

अपर्याप्त रहा। श्रावक की एक सामायिक का मूल्य मगध के सम्राट् के खजाने से भी कहीं अधिक है। ऐसी अवस्था में कौन जैन दीन-हीन हो सकता है? प्रत्येक जैन में ऐसी खुमारी होनी चाहिये कि वह बादशाहों और शाहंशाहों से भी अपने-आपको अधिक भाग्यशाली और ऐश्वर्यशाली माने।

धर्म और आत्म-सम्मान की खुमारी होना एक सद्गुण है। भाट बारोट को जब अकबर की सभा में जाना पड़ा था तो उसने पगड़ी हटा ली थी। उसे यह खुमारी थी कि मेरी पगड़ी केवल प्रताप के सामने ही झुकेगी, अन्य किसी के आगे नहीं। भूखा, प्यासा और निर्धन रहना स्वीकार है परन्तु प्रताप को छोड़ कर अन्य किसी के सामने पगड़ी झुकाना कदापि स्वीकार नहीं। ऐसी अजीब खुमारी थी भाट बारोट में!!

जैन को भी ऐसी खुमारी होनी चाहिये। देव गुरु धर्म के महारत्नों को पा लेने पर दीन-हीनता टिक ही नहीं सकती है। अतः कोई जैन न अपने आपको और न किसी दूसरे जैन भाई को दीन हीन समझे।

देव, गुरु और धर्म के सम्बन्ध के कारण जैन मात्र में एक पारिवारिक भावना होनी चाहिये। परिवार के व्यक्तियों के प्रति जैसी आत्मीयता होती है वैसी ही आत्मीयता और प्रीति साधर्मिकों के प्रति होनी चाहिये। श्रीमन्त जैनों को निर्धन जैन भाइयों के प्रति बहुमान और सम्मान रखना चाहिये

तक आ गई कि अन्न दांत का वैर हो गया । खानदानी व्यक्ति किसी के आगे हाथ तो पसार नहीं सकता । धधा कुछ रह नहीं गया था । बाल-बच्चो को भूखा कैसे रखा जा सकता था। खानदानी या कुलीनता से पेट तो नही भरता । बडी समस्या सामने खडी हो गई । जब मनुष्य अभाव से परेशान हो जाता है तो उसकी मानसिक समाधि और बुद्धि मे भी विक्षेप आ जाता है । जिनदास सेठ बहुत गम्भीर और पुण्य-पाप की विचारणा को समझने वाले थे । कमजोर स्थिति होने पर भी धर्म के प्रति उनकी रुचि बराबर कायम रही थी ।

पर्युषण के दिन आ गये धारणा-पारणा के लिये घर मे कोई व्यवस्था नही थी । जिनदास सेठ का मन बहुत क्षुब्ध हो गया । वे अपनी पहले की स्थिति को याद कर और आज की विषम स्थिति को देखकर विचलित हो उठे । कहाँ वह पूर्व की श्रीमन्ताई और कहाँ आज धारणा-पारणा का भी अभाव !

प्रसग वश यह कहना अनुचित नही होगा कि धारणा-पारणा का महत्त्व नही है, महत्त्व तो है उपवास का । परन्तु आजकल धारणा-पारणा का आडम्बर इतना बढ गया है कि उसमे उपवास गौण जैसा हो गया है। धारणा-पारणा मे गरिष्ठ पदार्थ सेवन करने की परिपाटी चल पडी है परन्तु यह न स्वास्थ्य की दृष्टि से ही ठीक है और न धार्मिक दृष्टि से हो । उचित तो यह है कि उपवास के ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

है। उनका सारा पुरुषार्थ खाने-पीने तक ही सीमित है। यही कारण है कि शास्त्रकारो ने कहा है कि मोक्ष में जाने वाले जीव निगोद के जीव का अनन्तवां भाग हैं। विरले व्यक्ति ही संसार व्यवहार की प्रवृत्तियो से ऊपर उठकर धर्माराधना में निमग्न होते हैं।

सेठ जिनदास के मन में कल की चिन्ता ने उथलपुथल मचा रखा था। इधर सेठ शान्तिदास भी प्रतिक्रमण करने उपाश्रय में आये। उन्होने प्रतिक्रमण करने के लिये तैयारी के रूप मे अपने वहुमूल्य वस्त्राभूषण उतारे और प्रतिक्रमण के योग्य वस्त्र धारण किये। धर्मक्रिया करते समय आभूषणो का त्याग करना ही चाहिये। वहुमूल्य आभूषणो का और मूल्य-वान भडकीले वस्त्रो का त्याग करके सादगीपूर्ण वस्त्रो से धर्माराधन करना चाहिये। शरीर के सत्कार या सस्कार का भी त्याग किया जाना चाहिये। धोती और उत्तरासन रखकर ही सामायिक, चैत्य वन्दन आदि करना चाहिये सामायिक में मोह-ममता वर्धक पदार्थों का त्याग करना ही चाहिये। कहा है-

"समणो इव सावओ हुज्जा, तम्हा सामाइयं बहुसो कुज्जा"

अर्थात्–सामायिक के समय मे श्रावक साधु तुल्य हो जाता है अतएव पुन पुन सामायिक करना चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि सामायिक के समय मे श्रावक को साधु के समान सादगी पूर्ण वेश रखना चाहिये।

शान्तिदास सेठ ने सामायिक लेने से पूर्व अपना हार

आजकल तो एक रुमाल भी इधर उधर हो जाय तो शोरगुल मचाया जाता है, धर्मस्थान के विरुद्ध उटपटाग और अट-शट वाक्यावली बोली जाती है। शान्तिदास सेठ समझदार और विवेकवान् थे। उन्होने सोचा कि-यदि मैं हीरे के हार के चोरी चले जाने की बात प्रकट करुगा तो इससे धर्मस्थान और धर्म के प्रति लोगो मे अविश्वास उत्पन्न होगा, धर्म की हीलना होगी, धर्मबन्धुओ के प्रति शका का वातावरण बनेगा। अतएव उन्होने इस बात को प्रकट न करना ही उचित समझा। कितनी गभीरता और महानता है यह! धर्म और धर्मस्थान की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये शान्तिदास सेठ ने हीरे के हार की कोई चिन्ता नही की। वे सहजभाव से अपने घर चले आये।

घर आने पर सेठानी ने देखा कि सेठजी के गले में हीरे का हार नही है। प्राय स्त्रियाँ हर बात की विशेष खबर रखने वाली होती हैं। आपकी अपेक्षा आपकी धर्मपत्नियाँ विशेष हिसाब-किताब रखती हैं!! विचक्षण सेठानी को समझने में देर नही लगी कि हार चोरी चला गया है। सेठजी ने हार की हकीकत बताते हुए सेठानी को सावधान किया कि वह किसी के सामने इस बात को प्रकट न करे। सेठजी ने कहा कि-अपनी कुलीनता इसी में है कि हम धर्म-स्थान मे हुई इस घटना को प्रकट न होने दे। यह तो सहज समझा जा सकता है कि किसी अत्यन्त जरूरतमद व्यक्ति ने ही विवश होकर ऐसा कृत्य किया है। परिस्थिति इन्सान को न जाने क्या-क्या करने को मजबूर करती है। साधारण व्यक्ति परि-

यह हार आप गिरवी रख लीजिये। आप मेरा विश्वास करते है, यह आपका बड़प्पन है। व्यवहार मे व्यावहारिक रीति से ही चलना चाहिये। शान्तिदास सेठ ने कहा—अच्छा, आपका आग्रह है तो आपके नाम की चिट्ठी लगा कर यह आपका हार रख लेता हूँ। यह कह कर उन्होने एक हजार रुपये जिनदास सेठ को दे दिये। जिनदास सेठ अपने घर चले आये।

जिनदास सेठ के जाने के पश्चात् शान्तिदास सेठ की धर्मपत्नी ने सेठ सा. से कहा कि—आपने जिनदास सेठ को हार पर रुपये दिये यह ठीक नही किया। उनको यो ही रुपये दे देने चाहिये थे!

सज्जनो! यह कितनी बडी बात है। यदि आजकल जैसी तुनुकमिजाजी स्त्री होती तो कहती—'शर्म नही आई, धर्मस्थान में चोरी करते हुए। इसे पुलिस के हवाले करो। हमारा ही हार चुरा कर हमारे यहा गिरवी रखने आया! धूर्त कही का!' इत्यादि शब्दो द्वारा उसके हृदय को वेध देती। परन्तु शान्तिदास सेठ की सठानी ऐसी नही थी। वह समझदार नारी सार्धमिक की प्रतिष्ठा की रक्षा करने वाली थी। धर्म और सार्धमिक के महत्त्व को समझने वाली थी इसलिये सब कुछ जानते हुए भी उसने जिनदास सेठ की प्रतिष्ठा को कुछ भी धक्का न लगने दिया! इसे कहते हैं स्वधर्मी वात्सल्य!

जिनदास सेठ कुलीन और स्वय अमीर थे। परन्तु धूप छाह के समान सुख-दुख आते-जाते रहते हैं। सूर्य का भी

इस प्रकार गुरुदेव के समक्ष दोनो ने अन्तःकरण पूर्वक आलोचन लेकर आत्म–शुद्धि की। साधर्मिक वात्सल्य का यह एक अत्यन्त प्रेरणास्पद उदाहरण है। इस पर आप गहराई से विचार करें और इस सत्कर्त्तव्य को निभाने का यथाशक्ति प्रयत्न करे।

साधर्मिक वात्सल्य के महत्त्व को कुमारपाल राजा ने समझा था जो प्रतिदिन एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ खर्च कर साधर्मिको को भोजन कराता था। उसने साधर्मिको से लिया जाने वाला ७२ लाख का वार्षिक कर लेना बद कर दिया था। वस्तुपाल–तेजपाल, झाझणशाह, आभडशाह, विमलमत्री आदि साधर्मिक वात्सल्य का एतिहासिक आदर्श उपस्थित करके भावी सन्तति के लिये प्रेरणा के अग्रज स्रोत बने है। उनके अनुपम और अनूठे कार्यों से आप सबको समुचित शिक्षा और प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये।

लौकिक कहावत है कि "अन्न एक तो मन एक।" इस लोकोक्ति मे गहरा आशय रहा हुआ है। जो जो व्यक्ति एक साथ बैठ कर खाना खाते हैं उनमे एक रूपता की भावना उत्पन्न होती है, उनमें परस्पर सद्भाव और स्नेह बढता है। आप लोग भी विधानसभा के सदस्यो को, अधिकारियो को टी–पार्टी एट–होम आदि देते हैं। अधिकारी और नेतागण भी परस्पर में, एक दूसरे के सम्मान मे भोज की व्यवस्था करते है। इनमें भी यही तत्त्व काम कर रहा है।

पर्युषण का द्वितीय व्याख्यान

महा मगलकारी, परम पवित्र, पर्वाधिराज पर्युंपण महापर्व का आज द्वितीय दिवस है। यह महापर्व सकल लौकिक लोकोत्तर पर्वों मे शिरोमणि तुल्य है। पुरुषो मे नरपति, नरपति के शरीर मे मस्तक, मस्तक पर मुकुट और मुकुट मे मणि सुशोभित होता है उसी तरह सामान्य दिनो की अपेक्षा पर्व की शोभा है, सामान्य पर्वों की अपेक्षा महापर्वो की महत्ता है, महापर्वों में भी लोकोत्तर महापर्व प्रधान है और उनमें भी पर्युंपण महापर्व सर्वोत्तम और परम कल्याणकारी है।

स्वान्तः सुखाय सर्वजनहिताय :

प्रश्न हो सकता है कि पर्युंपण पर्व की सर्वोत्तमता और प्रधानता का क्या कारण है ? इस प्रश्न का समाधान करने के लिये हमें पर्वों के प्रयोजन, उद्देश्य और उनको मनाने के आकार प्रकार और रीति-नीतियो पर विचार करना होगा। होली, दीवाली, दशहरा आदि लौकिक पर्वो का प्रयोजन और उद्देश्य क्षणिक आमोद-प्रमोद और भौतिक सुख-समृद्धि होता है। इनसे प्राप्त होने वाला हर्षोल्लास अल्पकालीन, अस्थिर और अनिश्चित होता है। इतना ही नहीं कभी कभी ये पर्व सुख के

कंकर पत्थर हटाये जाते हैं, कांटे अलग किये जाते हैं, भूमि जोती जाती है, पानी द्वारा सींच कर मिट्टी को मुलायम बनाई जाती है। इतनी सब क्रियाएँ कर लेने के पश्चात् बीजारोपण किया जाता है। तभी वह फलदायक होता है। इसी प्रकार अपने अन्तःकरण के खेत में सम्यक्त्व आदि शुद्धभावों का बीजारोपण करने के लिये हृदय में रहे हुए कण्टकों, शल्यों और दोषों को दूर करना आवश्यक होता है। इसी उद्देश्य से भूमिका-शुद्धि के लिये पर्युषण पर्व के सात दिवस रखे गये हैं। इन दिनों में धर्माचरण द्वारा अन्तःकरण को निर्मल और शुद्ध बना कर संवत्सरी के दिन आत्मिक भावों का बीजारोपण करना है। ऐसा करने से ही इस विराट आध्यात्मिक महापर्व की वास्तविक आराधना होती है।

पांच सत्कर्त्तव्यों में से अभयदान प्रवर्तन और स्वधर्मी-वात्सल्य—इन दो अंगों का निरूपण कल के व्याख्यान में किया गया था। शेष रहे हुए क्षमापना अष्टम तप तथा चैत्य परि-पाटी का प्ररूपण आज किया जाता है।

पर्व का मर्म: क्षमापना

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वीतराग महाप्रभु ने क्षमापना का महत्त्व बताते हुए उत्तराध्ययन सूत्र के २९ वें अध्ययन में फरमाया है—

'खमावणयाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? खमावणयाए पल्हायणभावं जणयइ। पल्हायणभावमुवगए

[illegible] -নাম-[illegible] নির্মাল্যসুধা-
[illegible]
[illegible] ।
[illegible] ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

महीने के काल मे तो कषायो का उपशमन नितान्त जरूरी है। अत. पर्युषण पर्व की आराधना करने की अभिलाषा वालो को कम से कम सवत्सरी के दिन तो क्षमापना पूर्वक उपशान्त बन ही जाना चाहिये। वैर–विरोध को दूर कर देना चाहिये।

यह स्मरण रखना चाहिये कि वैर से वैर और जहर से जहर बढता जाता है। खून का कपडा खून से साफ नही हो सकता। उसे धोने के लिये तो पानी ही अपेक्षित होता है। इसी तरह क्रोध या वैर का प्रतिकार क्रोध या वैर से नही हो सकता। इसके लिये क्षमा का रसायन ही फलदायक हो सकता है। वैर से वैर की परम्परा बढती जाती है। आग मे ईन्धन डालने से वह शान्त नही होती अपितु विशेष–विशेष भडकती है। सुभूम नामक क्षत्रिय राजा ने क्रोधवश ब्राह्मणो का नाश किया तो परशुराम ने २१ बार क्षत्रियो का विनाश किया। यह वैर की परम्परा वश–वशानुगत चलती रहती है। इतना ही नही भव–भवान्तर तक भी चलती है। गुणसेन तथा अग्नि-शर्मा तापस की वैर–परम्परा अनेक भवो तक चली, जिनमे अग्निशर्मा ने वैर–परम्परा बढाई, गुणसेन ने यह परम्परा बद कर दी। यह बात समरादित्य केवली के वृतान्त मे प्रगट होती है। इसीलिये शास्त्रकार भगवत फरमाते हैं कि –

"वेराणुबंधीणि महब्भयाणि"

यह क्रोध, हिसा, वैर–विरोध और कषाय महा भय-कर हैं और भवभवान्तर तक [illegible]

तरह तरह के वस्त्राभूषण और विविध उपहार मदनरेखा के पास भिजवाना शुरू किया।

सती मदनरेखा अनुपम सुन्दरी होने के साथ ही साथ अनुपम शीलवती और गुणवती भी थी। उपहारो के कारण मदनरेखा पर क्या असर होने वाला था ? शेषनाग की मणि कदाचित हाथ म आ सकती है,पराक्रमी सिंह की दाढ का हाथ में आना सम्भव है परन्तु सती शिरोमणि नारी का दूसरे के हाथ में आना सम्भव नही है। मणिरथ अपने प्रयत्नो मे सफल न हो सका। इस असफलता ने उसे अधिक विह्वल और बेभान बना दिया। एक बार मर्यादा छोडने पर मनुष्य का कितना पतन हो सकता है, यह नही कहा जा सकता। इसीलिये भर्तृहरिजी ने कहा है—

"विवेक-भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।"

जो व्यक्ति विवेक के सोपान से फिसल पडता है वह न जाने कितना नीचे जा गिरेगा यह नही कहा जा सकता है। मणिरथ विवेक भ्रष्ट हो चुका था। राजा का कर्त्तव्य, कुल के ज्येष्ठ का कर्त्तव्य, बडे भाई का दायित्व, जेठ की मर्यादा, सामान्य कुलाचार, साधारण नीतिधर्म आदि को बिसरा कर वह नराधम बन गया था। उसके हृदय में काम-वासना का कालुष्य जम चुका था अतएव उसके हृदय से सभी स्नेह, वात्सल्य करुणा आदि सद्भाव नष्ट हो गये। भयंकर क्रूर विचारों का आधिपत्य हो गया था। उसने माना—जब

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सती मदनरेखा पर वज्राघात हो गया ! उसके दुःख की कोई सीमा न रही। एक नारी के लिये इससे बढ़कर और कोई दूसरा दुःख नहीं हो सकता। ऐसी विषम स्थिति में नारी का धैर्य विचलित हुए बिना नहीं रहता परन्तु सती मदनरेखा विवेकवती नारी थी। उसने परिस्थिति को समझ लिया और अपने हृदय को वज्रमय बनाकर अपने कर्त्तव्य का निर्धारण कर लिया।

ऐसे कठिन प्रसंग में यदि कोई साधारण नारी होती तो अपना दुःख रोने बैठ जाती ! हाय मेरा क्या होगा ? मेरे बच्चे का क्या होगा ! यों रोना रोकर स्वयं भी व्याकुल बन जाती और मरणशय्या पर पड़े हुए व्यथित को भी आकुल-व्याकुल बनाकर संकल्प-विकल्प के भंवर में डाल देती। स्वयं आर्तध्यान करती और अपने पति को भी आर्त-रौद्र ध्यान में डालकर अशुभ संकल्पों से अशुभ गति का बंध करवाती। उसका परभव अमंगलकारी बनाती। परन्तु सती मदनरेखा विवेकशालिनी थी। उसने अपना रोना नहीं रोया। उसने पहले अपने परलोक के प्रति प्रयाण करने वाले पति की गति को सुधारने का कर्त्तव्य पूरा किया। वह अपने पति के शरीर को गोद में लेकर कहने लगी—हे नाथ ! आप शान्ति धारण करें। क्रोध या प्रतिशोध की भावना न आने दें। यह आपका अन्तिम समय है। "अन्ते मतिः सा गतिः।" अन्त समय में जैसी भावना होती है उसी के अनुसार गति होती है। अतएव आप अपने भाई के प्रति रोष और बदले

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

हैं। अपने २ शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सबको सुखदुख की प्राप्ति होती रहती है। "मैं इनका प्रतिपालक हूँ" यह अभिमान मिथ्या है। कोई किसी का आश्रयदाता या आश्रित नहीं है। सब जीव अपने २ पुण्य-पाप के आश्रित हैं। अतएव आप चिन्ता से सर्वथा मुक्त होकर अरिहंत देव का शरण लीजिये। नवकार मंत्र का जाप कीजिये। अपनी आत्मा को समाधि भाव में स्थापित कीजिये।"

"मैं अपनी ओर से आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं प्राणों को न्योछावर करके भी अपने धर्म और शील की परिपूर्ण रक्षा करुंगी। मैं आपकी धरोहर की परिपालना करुंगी। मेरी ओर से आप सर्वथा निश्चिन्त रहिये। परलोक के लिये प्रस्थान करते हुए आपके लिये यही मेरी अन्तिम भेंट है। आप परभव के इस पाथेय को साथ ले जाइये। नवकार मंत्र का स्मरण कीजिये अरिहंत-सिद्ध का शरण लीजिये सर्वजीवों से क्षमायाचना कीजिये और समाधिपूर्वक हँसते हँसते मृत्यु का स्वागत कीजिये।"

कितनी दृढ़ता है सती मदनरेखा की! नारी सुलभ अधीरता को हटा कर वज्रमय छाती बनाकर पति की मृत्यु को सुधार देना साधारण काम नहीं है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अपनी अर्द्धांगिनी की ऐसी उत्कट धीरता, पर्वत जैसी दृढ़ता और शुभ निष्ठा देख कर तथा उसकी हितकारी मंगलकारी शिक्षा पर मनन करने से युगबाहु को शान्ति मिली। उसने क्रोध और प्रतिशोध को दूर कर दिया। समाधिभाव में

[illegible]

[illegible]

[illegible]

को वन्दन किया है। सभाजनों को वृतान्त सुन कर बड़ा प्रमोद हुआ।

कहने का तात्पर्य यह है कि सती मदनरेखा को हम साक्षात् क्षमा की प्रतिमा कह सकते हैं। कितना उत्कृष्ट है उसका क्षमाभाव ! पति के हत्यारे के प्रति भी रोष न आना, मन में तनिक भी दुर्भाव न आने देना, आर्तध्यान या रौद्र-ध्यान के वशवर्ती न होना सचमुच असाधारण आदर्श है। धन्य है सती मदनरेखा और धन्य है उसका आदर्श क्षमाभाव ! ऐसी क्षमामूर्ति को हमारे कोटिश. वन्दन और अनन्त-अनन्त वन्दन हो !! ऐसी आदर्श नारी के जीवन वृत्त से हम क्षमा-पना के मर्म को समझें तो हमारा जीवन भी धन्य-धन्य हो सकता है।

क्षमा वीरस्य भूषणं

क्षमा अमृत है, क्रोध जहर है। क्षमा दिव्य रसायन है, क्रोध भयंकर व्याधि है। क्षमा पुष्करावर्त मेघ है और क्रोध दावानल है। जो वीर है, धीर है, गम्भीर है, जो गुणवान् है, महान् है, प्रधान है वही क्षमा कर सकता है। जो भरा-पूरा है, शौर्य सम्पन्न है, और गुण-गरिमा प्राप्त है वही झुकता है, नम्र होता है। तुच्छ, छिछला और ओछा व्यक्ति ही अकड़ता है। नीतिकार ने कहा है -

नमे सो आंबा आमली, नमे सो दाड़िम दाख।
एरंड बेचारा क्या नमे, जाकी ओछी साख॥

यह बात सही है कि क्षमा के आवरण के नीचे कायरता को आश्रय नही मिलना चाहिये। कायर व्यक्ति क्षमा कर ही नही सकता। जो सत्व सम्पन्न होगा वही क्षमा करेगा। क्षमा वीर का भूषण है। इस सम्बन्ध मे राजा उदायन और चण्डप्रद्योतन का उदाहरण मननीय है।

राजा उदायन की क्षमापना:

सिंध देश का राजा उदायन था। उसकी राजधानी वीतभय पाटन थी। उज्जयिनी का राजा चण्डप्रद्योतन था। चण्डप्रद्योतन ने उदयन की दासी का उपहरण कर लिया था। एव भगवान श्रीमहावीर देव की प्रभावशाली प्रतिमाजी का अपहरण भी किया था। अत उदायन ने चण्डप्रद्योतन पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। इतना ही नही उसे बन्दी बना कर उसके कपाल पर 'दासीपति' शब्द अंकित करवाया। तत्पश्चात् उसने अपनी सेना के साथ वीतभय पाटन की ओर प्रस्थान किया। इतने मे पर्युषण पर्व आ गया। उदायन राजा ने पर्युषण पर्व की आराधना के लिये दशपुर मे पडाव डाला। संवत्सरी के दिन उदायन राजा ने उपवास किया। अत: रसोइये ने चण्डप्रद्योतन से पूछा कि आपके लिये क्या रसोई बनाई जावे। चण्डप्रद्योतन को शंका हुई कि हमेशा तो नही, आज क्यो कर पूछा जा रहा है। उसने रसोइये से कहा कि यह बात आज क्यो पूछी जा रही है।

रसोइये ने कहा—आज हमारे राजा को पर्युषण पर्व

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

आया। उससे क्षमायाचना करते हुए उसे सकोच या लज्जा का अनुभव नही हुआ।

चण्डप्रद्योतन ने कहा–जब तक आप मुझे बन्धनमुक्त नही कर देते तब तक मैं आपको क्षमा प्रदान नहीं कर सकता।

उदायन ने सोचा–सवत्सरी पर्व की वास्तविक आराधना शत्रु के साथ क्षमायाचना करने से ही हो सकती है। अपने स्वजनो, रिश्तेदारो या स्नेहियो से क्षमायाचना करना तो केवल रूढि है। जिसके साथ वैरविरोध हुआ हो कलह-क्लेश हुआ हो, उससे क्षमायाचना करना वास्तविक क्षमायाचना है। इसमे ही पर्व की वास्तविक आराधना है।

यह सोचकर उदायन राजा ने चण्डप्रद्योतन को बन्धन-मुक्त कर दिया। इतना ही नही पूर्व मे उसके कपाल पर अंकित करवाये गये 'दासीपति' शब्द को छिपाने हेतु उसे सम्मान पूर्वक स्वर्णपट्टक अर्पित किया।

इस प्रकार उदायन राजा ने वैरी के साथ क्षमापना करके वास्तविक पर्युषणपर्व का आराधन किया। उदायन राजा शक्तिशाली था, विजेता था, तदपि उसने अपने अधीन बने हुए बन्दी राजा चण्डप्रद्योतन से क्षमा मांगी। यह उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि क्षमा करना कायरो का नही अपितु वीरो का भूषण है।

उदायन राजा ने सरलभाव से क्षमापनापर्व की आरा-

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

दिया। कुम्भकार ने सोचा—महाराज का तो यह खेल हो गया और मेरी दुर्दशा हुई जा रही है। उसने फिर क्षुल्लक को चेतावनी दी। क्षुल्लक ने फिर 'मिच्छामि दुक्कड' दिया।

चौथी बार फिर क्षुल्लक ने 'कंकर मारा। अब कुम्भकार से न रहा गया! उसने क्षुल्लक महाराज का कान मरोड दिया और बोला 'मिच्छामि दुक्कड'। यों कई बार कान मरोड़ा और कई बार 'मिच्छामि दुक्कड' बोला। क्षुल्लक ने तंग होकर कहा—कान मरोड़ते जाते हो और मिच्छामि दुक्कड कहते जाते हो? यह कैसा 'मिच्छामि दुक्कड"। कुम्भकार ने कहा—जैसा आपका मिच्छामि दुक्कड' वैसा मेरा 'मिच्छामि दुक्कड'।

कहने का तात्पर्य यह है कि कुम्भकार और क्षुल्लक जैसा "मिच्छामि दुक्कड" आत्मा को पवित्र नहीं कर सकता। अपने द्वारा की जाने वाली भूल का सच्चे हृदय से पश्चात्ताप करना और भविष्य में उस भूल को फिर से न दुहराने की सावधानी रखना वास्तविक 'मिच्छामि दुक्कड' है। पर्व पर्युषण के इन पवित्र दिनों में धार्मिक क्रियाएँ करते समय आप भी अनेक बार 'मिच्छामि दुक्कड' बोलते हैं। परन्तु क्या आप इस बात की सावधानी रखते हैं कि वे भूलें दुबारा आपके द्वारा न हों? 'मिच्छामि दुक्कड' की सार्थकता इसी में है कि सच्चे हृदय से भूल का पश्चात्ताप हो और दुबारा भूल न करने का संकल्प हो। इस विषय में साध्वीजी श्री मृगावतीजी का उदाहरण स्मरणीय है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कुलीन हो, ऐसा करना तुम्हारे योग्य नही है" ऐसा कहते ही निद्राधीन हो गई । इसलिये साध्वीजी श्री मृगावतीजी के "दुवारा ऐसी भूल न करुगी, क्षमा कीजिये" इस कथन का श्री चन्दनवालाजी ने कोई उत्तर नही दिया ।

साध्वीजी श्री मृगावतीजी पर इसका दूसरा ही प्रभाव पड़ा । वे कुलीन थी अतएव उनकी विचारधारा उच्छृखलता की ओर न वढ कर आत्मालोचन की ओर मुडी । उन्होने सोचा—मेरी क्षमायाचना से मेरी प्रवर्तिनीजी को पूरा सतोष नही हुआ । जहाँ तक प्रवर्तिनीजी अपने श्रीमुख से "अपराध माफ किया" ऐसा न कहे वहाँ तक मुझे प्रवर्तिनीजी के चरणो मे पडी ही रहना चाहिये । ऐसा निर्णय करके साध्वीजी श्री मृगावतीजी अपनी गुरुणीजी के चरणो मे ही क्षमा प्राप्त करने के लिये झुकती रही । इस बीच में गुरुणीजी को निद्रा भग करने का उन्होने कोई प्रयास नही किया । इस प्रकार आत्मालोचन एव क्षमापना की भावना मे वे रमती रही । भावनाओ में अजब-गजब की शक्ति होती है । क्षण प्रतिक्षण श्री मृगावतीजी की भावनाएँ शुद्ध और शुद्धतर होती गई । वे क्षपक श्रेणी पर आरूढ हो गई और वही उन्हे केवल ज्ञान की प्राप्ति होगई । क्षमापना के परम और चरम फल को उन्होने प्राप्त कर लिया ।।

क्षमापना के लिये हृदय को निर्मल और नम्र बनाने की आवश्यकता होती है । हृदय मे नम्रता आये बिना सच्चा क्षमापना का भाव पैदा नही हो सकता । क्षमापना आये बिना

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

जन्म दिया । आश्चर्य और जिज्ञासा से प्रवर्तिनी श्री चन्दनबालाजी ने श्री मृगावतीजी से पूछा कि–ऐसे गाढ अन्धकार में तुम काले सर्प को किस प्रकार देख सकी ?

साध्वीजी श्री मृगावतीजी ने कहा–"आपकी कृपा से प्राप्त ज्ञान के प्रकाश से मैं देख पाने मे समर्थ हुई।"

गुरुणी चन्दनबालाजी एक दम उठ बैठी और पूछा कि-कौनसा ज्ञान ? प्रतिपाति या अप्रतिपाति ज्ञान ?

केवलज्ञानी मृगावतीजी ने कहा–अप्रतिपाति ज्ञान।

प्रवर्तिनी श्री चन्दनबालाजी ने जान लिया कि मेरी शिष्या साध्वीजी श्री मृगावतीजी को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है। मैंने केवलज्ञानी को अनाभोग मे आशातना की। उनके हृदय मे भी पश्चात्ताप की भावना प्रकट हुई और उन्होने केवलज्ञानी साध्वी मृगावतीजी से क्षमापना चाही। क्षमापना के भाव मे वे भी इतनी ऊँचाई पर पहुँच गईं कि क्षपक श्रेणी पर आरूढ होकर केवलज्ञान उपार्जन कर लिया।

इस प्रकार साध्वी मृगावतीजी और प्रवर्तिनी चन्दन-बालाजी दोनो क्षमापना के उच्च परिणामो के कारण अनुत्तर केवलज्ञान–केवलदर्शन की धारिका बन गईं। यह है क्षमापना का परम और चरम परिणाम !!

चण्डरुद्राचार्य का क्षमाशील शिष्य:

रुद्राचार्य नाम के एक आचार्य स्वभाव से अत्यन्त क्रोधी

यह है क्षमा का सुन्दर और मधुर परिणाम !!

कषाय विजयः

उक्त समस्त उदाहरणो के मर्म को हृदयगम करके हे भद्र आत्माओ ! कषायो पर विजय प्राप्त करने का पूरा-पूरा प्रयास करो । शास्त्रकार के इन वचनो को अपना मुद्रा लेख बनाओ –

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
माय अज्जवभावेण लोहं संतोसओ जिणे ॥

"उपशम भाव से क्रोध को जीतो, मृदुता से अहंकार को पराजित करो, सरलता से माया का निकन्दन करो और संतोष के द्वारा लोभ को नियन्त्रित करो ।"

हे भव्य पुरुषो ! कही ऐसा न हो कि कषाय तुम पर हावी हो जावे और तुम्हारी सारी आराधना निष्फल हो जावे । यह स्मरण रखना चाहिये कि वर्षों की आराधना क्षण भर के तीव्र कषाय के उदय से निष्फल हो जाया करती है । दमसार मुनि को नजदीक आया हुआ केवलज्ञान कषाय करने के कारण दूर चला गया । अतएव कषायो पर विजय प्राप्त करने का प्रबल पुरुषार्थ करो । जब कषायो के विरुद्ध तुम सिंहनाद करके खड़े हो जाओगे तो निस्सदेह केवलज्ञान-दर्शन की सान्निध्यता प्राप्त कर सकोगे ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

की आज्ञा मे चलना हम सब का कर्त्तव्य हो जाता है। वे पाप-ताप के उपद्रवो से, मोह मद मत्सर आदि लुटेरो से हमारी रक्षा करते हैं अतएव शासनाधिपति भगवत जिनेश्वर महाप्रभु ने भी हम साधु-साध्वी-श्रावक श्राविका रूप आराधक प्रजा-जन पर अष्टम तप का अनिवार्य टेक्स लगाया है। उनके इस आवश्यक फरमान का पालन करना प्रत्यक जैन का कर्त्तव्य है। जैन कुल में जन्म लेने वाले बालक-बालिका भी तप और त्याग मे उल्लास पूर्वक भाग लेते हैं। इसलिये शक्ति का गोपन न करते हुए पर्युषण पर्व में एक अष्टम तप अवश्य करना चाहिये।

टेक्स में दी गई छुट:—

जिस प्रकार राज्य-शासन टेक्स लगान के बावजूद भी विशेष परिस्थितियो मे टेक्स सम्बन्धी विशेष सुविधाओ का प्रावधान करता है, वसूली में सहूलियत देता है, छोटी २ किश्तो में भुगतान करने की छूट देता है, समय को पाबदी मे सुविधा कर देता है। इसी प्रकार जिनेश्वर भगवतो ने भी तप की आराधना में विशेष परिस्थिति और पात्र की क्षमता-अक्षमता को दृष्टिगत रख करक तिपय सुविधाओ का प्रावधान भी कर दिया है। साधारणतया शक्ति होने पर अष्टम तप करने का फरमान है परन्तु यदि एक साथ तीन उपवास करने की शक्ति न हो तो अलग-अलग तीन उपवास करके भी तप की पूर्ति की जा सकती है। यदि अलग २ तीन उपवास भी न हो सके तो ६ आयम्बिल करना चाहिये। छह आयम्बिल भी

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

काल में जितने जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे वे सब परम प्रभु परमात्मा जिनेश्वर भगवान् की आज्ञा की आराधना से ही अपने साध्य को सिद्ध कर सके हैं और करेंगे। भगवान् की आज्ञा की आराधना ही मोक्ष की आराधना है। अतएव भगवान् की आज्ञा के आराधन हेतु जो तप ऊपर बताया गया है उसकी भावपूर्वक पूर्ति अवश्य ही कर लेनी चाहिये।

तप की महिमाः

जिस प्रकार जाज्वल्यमान अग्नि जीर्ण काष्ठों को जला कर भस्म कर डालती है उसी प्रकार सयम पूर्वक किया गया तप सब कर्मों को जला कर भस्म कर देता है। जिस प्रकार सोने मे मिले हुए मिट्टी आदि अन्य वैभाविक तत्वो को अग्नि और क्षारादि तत्व नष्ट कर देते है और स्वर्ण अपने सहज स्वरूप में आ जाता है। इसी प्रकार तप के द्वारा आत्मा मे मिले हुए कर्मपुद्गल नष्ट हो जाते हैं और फलतः आत्मा अपने सहज शुद्ध निर्मल स्वरूप मे आ जाता है।

शास्त्रकार भगवतो ने उत्तराध्ययन सूत्र मे फरमाया है —

"तवेणं भंते! जीवे किं जणयइ? तवेणं वोदाणं जणयइ। वोदाणेणं भंते जीवे किं जणयइ? वोदाणेणं अकिरियं जणयइ। अकिरियाए भवित्ता तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वायइ, सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ।"

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

तथा उपसर्ग-परीषहों का वृत्तान्त पढ़ कर एवं श्रवणकर रोमांच हो उठता है। उतनी कठोर तप की आराधना तथा उत्कृष्ट सहनशीलता अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। मनुष्य ही नहीं सुर-असुर और इन्द्र भी कम्पित हो उठे। १२ वर्ष, ६ मास और १४ दिन के दीर्घ तपश्चरण काल मे केवल ३४९ दिन ही आहार (पारणा) किया। लागातार ६ मास का १ तप, पांच मास २५ दिन का १ तप, चार मास के ९ तप, ३ मास के २ तप, २॥ मास के २ तप, २ मास के ६ तप, १। मास के २ तप, मासखमण १२, पन्द्रह दिन के ७२ तप, अष्टम तप १२, छट्ठ तप २२९, भद्र तप १, महाभद्र तप १, सर्वतोभद्र तप १, इस प्रकार १२॥ वर्ष, १४ दिन के तप-काल मे केवल ११ मास १९ दिन (अर्थात् ३४९ दिन) ही आहार ग्रहण किया। शेष समय तक सर्वथा निराहार रहे।

इस प्रकार की दीर्घ एवं कठोर तपश्चर्या के कारण भगवान् महावीर को 'श्रमण' कहा जाता है। कठोर तप-आराधना के कारण वे 'श्रमण' (श्राम्यति-तपस्यतीति श्रमण') के प्रशस्त शब्द द्वारा इन्द्र से प्रशंसित हुए। संसार का कोई अन्य महा-पुरुष 'महावीर' की उपाधि से विभूषित नहीं हुआ। अन्य महापुरुष 'वीर' की उपाधि से मण्डित हुए जबकि श्रमण भगवान् वर्द्धमान स्वामी अपनी कठिन तप-आराधना के कारण 'महावीर' के रूप में लोक विश्रुत हुए।

तप पद की पूजा में कहा गया है -

द्वारिका नगरी का विनाश होने वाला था। इस उपद्रव से रक्षा करने वाला आयम्बिल तप ही था। जब तक द्वारिका नगरी में आयबिल का तप चलता रहा तब तक कुपित देव भी द्वारिका कुछ न बिगाड सका। १२ वर्ष तक घर-घर में आयबिल तप चलता रहा तब तक द्वारिका का विनाश न हो सका। यह तप की महिमा समझनी चाहिये।

नंदन ऋषि ने ग्यारह लाख अस्सी हजार चार सौ पिच्याणु (११,८०,४९५) मासखमण करके तप की आराधना द्वारा निर्वाण प्राप्त किया था।

श्री गौतमस्वामीजी बेले-बेले पारणा करते थे।

काकदी के धन्ना अनगार बेला-बेला पारणा करते थे। पारणा के दिन भी आयबिल करते थे। इतने कठोर तप के कारण धन्ना अनगार का शरीर श्री-हीन, शुष्क और क्षीण हो गया था किन्तु उनकी आत्मा अत्यन्त उज्ज्वल हो गई थी। भस्म राशि से आच्छादित अग्नि की तरह धन्ना अनगार की आत्मा तप के तेज से अत्यन्त सुशोभित थी।

एक बार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से उनके परम भक्त श्रेणिक राजा ने प्रश्न किया कि "हे भगवन्! आपके चवदह हजार साधुओं में कौन अनगार महादुष्कर क्रिया करने वाला और महानिर्जरा करने वाला है?

इस प्रश्न के उत्तर में श्रमण भगवान् महावीर देव ने

है जिससे नारकी का शरीर लोहू-लुहान हो जाता है इस प्रकार अनन्त, असह्य, तीव्र वेदना नारकी जीव भोगते रहते है। सौ वर्ष तक ऐसी दुस्सह यातनाएँ सहन करने से जितने कर्मों की निर्जरा होती है उतने अशुभ कर्मों की सकाम निर्जरा एक नवकारसी का तप भावपूर्वक करने से होती है।

पोरसी का प्रत्याख्यान करने से एक हजार वर्ष पर्यन्त नारकी के असह्य दुख सहन करने से जितने कर्मो की निर्जरा होती है, उतने अशुभ कर्म निर्जरित हो जाते है।

साढ्ढ पोरसी के प्रत्याख्यान से दस हजार वर्ष तक नरक में जो कर्म निर्जरा होती है उतनी सकाम निर्जरा होती है।

पुरिमड्ढ (दो पोरसी) के तप का आराधन करने से एक लाख वर्ष के नारकी योग्य पापकर्म की निर्जरा होती है।

एकासन तप करने से दस लाख वर्ष का, नीवी तप करने से एक करोड वर्ष का, एकल ठाणा तप करने से दस करोड वर्ष का, एकलदत्ती तप से सौ करोड़ वर्ष का, आयबिल तप करने से एक हजार करोड वर्ष का, उपवास तप करने से दस हजार करोड वर्ष का, छट्ठ तप करने से एक लाख करोड वर्ष का, अष्टम तप करने से दस लाख करोड वर्ष का नारक-योग्य पापकर्म दूर हो जाता है। यों ज्यों ज्यो एक उपवास बढ़ता जाता है त्यों त्यो दस दस गुणा पापकर्म नरक मे

जिस प्रकार खेत मे धान्य आदि के साथ साथ घास-फूस भी उग जाता है लेकिन घास-फूस के लिये खेती नही की जाती है। वह तो धान्य के साथ स्वयमेव उग आता है। (मनुष्य केवल धान्य खाते है, और घास पशुओ के लिए है,) इसी प्रकार तप के द्वारा पापकर्मों का क्षय हो जाने से पुण्य तो स्वयमेव हो ही जाता है और उसके फलस्वरूप सातावेदनीय के फल-सासारिक सुख भोग स्वयमेव प्राप्त हो जाते है। परन्तु सासारिक सुख भोगो की प्राप्ति के निमित्त तप करना, महिमा पूजा या प्रशसा के हेतु तप करना तपस्या के फल को हार जाना है। जैसे कोई व्यक्ति चिन्तामणि रत्न को कौडी के बदले बेच देता है तो वह अज्ञानी और अविवेकी माना जाता है। ठीक इसी तरह यदि कोई व्यक्ति तप करके सासारिक फल की कामना करता है तो वह तप रूपी रत्न को सासारिक सुख रूपी कौडी के मोल बेच देता है। इसलिये तप का उद्देश्य केवल निर्जरा और मोक्ष ही होना चाहिये। सासारिक सुखोपभोग, स्वर्ग की लालसा अथवा कीर्ति-प्रशसा की अभिलाषा से कदापि तप नही करना चाहिये। यह तो तप का आनुषगिक फल है। सासारिक कामनाओ से किया जाने वाला तप आत्मा की विशुद्धि करने वाला नही होता है। मोक्षमार्ग मे उसका कोई महत्व नही है। तामली तापस ने साठ हजार वर्ष तक तप किया परन्तु वह कामनाओ से प्रेरित होने से मोक्षमार्ग मे उपयोगी नही हुआ। वह अज्ञान तप है। निर्जरा की भावना से की गई एक नौकारसी का महत्व करोडो वर्षो के अज्ञान तप से कही अधिक श्रेयस्कर है। सम्यग्दृष्टि श्रावक मोक्ष के लिये

निराहार रहने वाले व्यक्ति के विषय-इन्द्रियो के विकार-दूर हो जाते हैं। जो आसक्ति रह जाती है वह भी परम-आत्म तत्त्व के चिन्तन से नष्ट हो जाती है।

गीता के उक्त कथन से उपवास आदि तप की महिमा स्पष्ट प्रकट हो जाती है। इन्द्रियो के विकारो का आहार के साथ घनिष्ठ सबध रहता है। पौष्टिक आहार से इन्द्रिया तूफानी हो जाती हैं, मन चचल होकर उन्मार्ग की ओर चला जाता है। जिस प्रकार लगाम रहित उद्दाम अश्व इधर-उधर दौडता हुआ ऊधम मचाता है। उसका निग्रह करने के लिये लगाम लगाना जरूरी हो जाता है। इसी प्रकार तूफानी इद्रियाँ और चचल मन का निग्रह करने के लिये तप की आवश्यकता है। मोह के बन्धन से मुक्त होने के लिये, कर्म के भार से हल्का होने के लिये, शरीर और आहार की गुलामी से छुटकारा पाने के लिये और आत्मा के सहज शुद्ध चिदानन्दमय स्वरूप को प्राप्त करने के लिये तप अमोघ साधन है। अतएव इन पर्वदिनो मे अष्टम तप की आराधना अवश्य करनी चाहिये।

शल्य रहित तपः

शल्य रहित होना तप का भूषण है। जैन सिद्धात मे शल्य को बहुत बडा पाप माना गया है। प्रत्येक धार्मिक या व्यवहारिक क्रिया शल्य रहित होकर करने का भारपूर्वक निर्देश दिया गया है। शल्य रख कर की गई क्रिया पापानुबधी मानी गई है। दीर्घ काल तक वह [illegible]

है। प्रकट शत्रु की अपेक्षा अप्रकट शत्रु विशेष हानिकर होता है। अतएव उससे बचने के लिये विशेष जागरूकता रखनी पड़ती है। इसलिये शास्त्रकारों ने माया से बचने के लिये जगह जगह पर मुमुक्षुओं को सावधान किया है। तप का आराधन भी माया शल्य से रहित होकर करना चाहिये। तप पद की पूजा में कहा गया है—

पीठ अने महापीठ मुनीश्वर, पूर्व भव मल्लिजिन नो
साध्वी लक्ष्मणा तप नवि फलियो, दंभ गयो नहि मननो
हो प्राणी तप पदने पूजीजे ॥

पीठ और महापीठ मुनि ने संयम का पालन तो उत्कट भाव से किया परन्तु मन मे माया के भाव रखे, गुरु के प्रति मन मे ईर्षा भाव लाये और इसकी आलोचना नही की तो उन्होने स्त्रीवेद का बंध कर लिया। वे ब्राह्मी और सुन्दरी के रूप में जन्मे। श्री मल्लिनाथ जिनेश्वर के जीव ने पूर्वभव में अपने साथियो से आगे बढ़ने की भावना से कपट पूर्वक तप का आचरण किया जिसके फलस्वरूप उन्हे स्त्रीवेद की प्राप्ति हुई।

साध्वी लक्ष्मणा ने हजारो वर्षों तक कठिन तप का आचरण किया परन्तु अपने मन से चिन्तित दुष्कृत्य की कपट पूर्वक आलोचना की, सरलता से आलोचना नहीं की अतएव उसका हजारो वर्षों का किया हुआ तप भी सफल नहीं हुआ। इसलिये तप की आराधना करते हुए माया-शल्य को अन्तःकरण से निकाल कर सरल और निष्कपट भाव अपनाने की

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

भोग सामग्री का भोगने वाला बनूं। मुनि ने सयम की मर्यादा को लाघकर मन ही मन ऐसा निदान कर लिया।

इसी निदान के फलस्वरूप वह मुनि का जीव ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बना। निदान करने से इच्छित भोग्य वस्तु प्राप्त तो हो जाती है परन्तु वह जीव आत्मकल्याण के मार्ग मे बहुत ही अधिक पिछड जाता है। वह आत्मकल्याण के पथ पर नही चल सकता और विषयो का कीडा बन कर दीर्घकाल तक नरकादि स्थानो में यातना का अनुभव करता है।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के पूर्व के पाच भवो के भाई चित्त मुनि अपने भाई को विषयोपभोगो मे आसक्त जान कर उसे प्रतिबोध देने के हेतु उसके पास आते हैं और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को भोगो की असारता बतलाते है। अपने पूर्वभवो का उल्लेख करते हुए उन्होने कहा कि हे राजन्। अपन दोनों पूर्व के पाच जन्मो से भाई-भाई रहे है। तुम्हारे द्वारा किये गये निदान के कारण इस भव में हम अलग अलग उत्पन्न हुए हैं। पूर्वभव के स्नेह के कारण मे तुम्हे प्रतिबोध देने आया हूँ। राजन्! समझो, सब गीत विलाप तुल्य है, सब नृत्य विडम्बना है, सब आभरण भार हैं सब कामभोग दुःख देन वाले हैं। हम दोनो ने पूर्वभव में भी साथ साथ सयम का आराधन किया था। यह मत भूलो कि तपोधनी मुनियो को जो सुख है वह कामभोगो मे आसक्त राजा-महाराजाओ को नहीं है। अतएव हे राजन्! विषय भोगो को छोडो और आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलो। यही समझाने के लिए मै आपके पास आया हूँ।'

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अधर्म को धर्म मानना मिथ्यात्व है। इसी तरह सुगुरु को कुगुरु मानना, सुदेव को कुदेव मानना और धर्म को अधर्म मानना भी मिथ्यात्व है। राग और द्वेष से अतीत वीतराग भगवंत ही सच्चे देव हैं, कंचन-कामिनी के त्यागी साधु ही सच्चे साधु हैं और वीतराग सर्वज्ञ भगवंत द्वारा प्ररूपित अहिंसा आदि ही धर्म का सच्चा स्वरूप है। इस तत्त्व पर वास्तविक श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है और इससे अन्यथा मानना मिथ्यादर्शन है। यह मिथ्यादर्शन शल्य के समान दुखदायी है। अतः मिथ्यादर्शन शल्य से अपने आपको बचाकर शुद्ध श्रद्धाभाव का आश्रय लेना चाहिये।

इस तरह तप और संयम की निर्मल आराधना के लिये ऊपर बताये हुए तीनों शल्यों से रहित होना चाहिये। शल्य युक्त आत्मा चाहे हजारों वर्षों तक तप करे वह सब निष्फल होता है। इसलिये अन्तःकरण के सब शल्यों को निकाल कर, हृदय की भूमि को स्वच्छ बना कर तप का अनुष्ठान करना चाहिये जिससे कल्याण की परम्परा को प्राप्त कर सकें।

बाह्य और आभ्यन्तर तप

जैन परम्परा में तप के दो भेद कहे गये हैं-(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। बाह्य तप मुख्यतया शरीर-सापेक्ष होता है जबकि आभ्यन्तर तप चित्त की अन्तरंग वृत्तियों से सम्बद्ध होता है। बाह्य तप का असर शरीर पर परिलक्षित होता है और वह बाहर जन साधारण में देखा जा सकता है।

३ वृत्ति संक्षेपः-

ऊनोदरी तप में खाद्य वस्तु का प्रमाण कम करने का कहा गया है जबकि इस तप में खाद्य वस्तुओं की संख्या कम करने का कहा गया है। यथाशक्ति कम से कम वस्तुओं से अपना काम चला लेने की आदत डालने से इन्द्रियों पर काबू प्राप्त होता है और अनेक प्रकार की झंझटों से सहज मुक्ति मिल सकती है। जीवन में सात्विकता लाने के लिये इस तप की बहुत आवश्यकता है। जैन शासन में प्रतिदिन चवदह नियम धारण करने का विधान किया गया है उसका अभिप्राय भी वृत्ति संक्षेप तप से है।

४ रस परित्यागः-

विकार उत्पन्न करने वाले पौष्टिक एवं मादक पदार्थों का परित्याग करना रस-परित्याग है। मधु, मक्खन, मद्य और मांस ये चार महाविकारी पदार्थ सर्वथा त्याज्य और अभक्ष्य हैं। दूध, दही, घी, तेल, गुड़-शक्कर और पक्वान्न ये छह विगय छोड़ना रस परित्याग तप कहलाता है। रसों से जिह्वा का रस बढ़ता है। जिह्वा के रस से संसार का रस बढ़ता है। जिह्वालोलुप व्यक्ति स्वाध्याय आदि धर्मसाधना में प्रमादी बनता है। अतएव संयम में उद्युक्त बनने के लिये रस परित्याग तप करना ही चाहिये।

५ कायक्लेशः-

शारीरिक सुख-[illegible] को कम करने के लिये कष्टों

अत: उससे बचने के लिये यह तप किया जाता है। एक जगह स्थिर होकर बैठना, व्याख्यान–सामायिक आदि धर्मक्रिया के अवसर पर स्थिर होकर बैठना, बार बार हाथ पाव ऊँचा नीचा न करना, निरर्थक हलन–चलन न करना, यह प्रति–सलीनता तप है।

उक्त रीति से बाह्य तप के छह भेद बताये हैं। अब आभ्यन्तर तप के छह भेद बताये जाते है। १ प्रायश्चित, २ विनय, ३ वैयावृत्य, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान और ६ कायोत्सर्ग।

१ प्रायश्चित:-

अज्ञानदशा, मोहावस्था या विषयादि की वासना के कारण जो भूलें हो जाया करती है उनके लिये पश्चाताप करना, गुरु आदि पुज्य पुरुषो के समक्ष सरल भाव से निवेदन कर देना और वे जो दण्ड देवे उसे स्वीकार करना प्रायश्चित तप है। यह तप आत्मा के मैल को धो देने वाला, और आत्मा को शुद्ध बनाने वाला कहा गया है। प्रायश्चित की आग मे तप कर आत्मा रूपी सोना निर्मल होकर निखर उठता है।

२ विनय:-

विनय, धर्म का मूल कहा गया है। विनय से नम्रता आती है। नम्रता से गुरु की प्रसन्नता प्राप्त होती है। गुरु की प्रसन्नता से सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है। सम्यग्ज्ञान से विरति और विरति से संवर–निर्जरा होती है। संवर-निर्जरा से मोक्ष

यथायोग्य वैयावृत्य करने से आत्मा ससार सागर से पार हो जाता है।

४ स्वाध्यायः-

श्रुत का पठन पाठन करना भी तप माना गया है। आत्मा की परिणति को शुद्ध करने वाले ग्रन्थो का वाचन करना, तत्व विषयक प्रश्नोत्तर करना, पढ हुए ग्रन्थ को पुनरावृत्ति करना, तत्त्व चिन्तन करना तथा धर्मोपदेश देना या श्रवण करना, यह सब स्वाध्याय तप ह। अपने मन को ऐसो सात्विक प्रवृत्ति मे लगाये रहने से आत्मा स्वाभाविक आनन्द की अनुभूति करके मोक्षमार्ग मे प्रगति करता रहता है। जो अशक्त आत्मा अनशन आदि तप करने में कर्मोदय से असमर्थ होते हैं उन्हे स्वाध्याय तप के द्वारा उसकी पूर्ति करने का निर्देश दिया गया है। आत्मा की शुद्धि करने के लिये स्वाध्याय तप की आराधना अवश्यमेव करनी चाहिये। यह ज्ञान-दशन और चरित्र की दृढता और निश्चलता को बढाने वाला है। सक्षेप में स्वाध्याय तप मोक्षमार्ग को प्रशस्त बनाने वाला है।

५ ध्यानः-

चित्त का निरोध करना ध्यान कहलाता है। इसके चार भेद बताये गये हे-१ आर्तध्यान, २ रोद्रध्यान, ३ धर्मध्यान, और ४ शुक्ल ध्यान। शरीर धन और कामभोगो को प्राप्त करने की और प्राप्त होने पर उनका वियोग न होने की चिन्ता करना आर्तध्यान है। अप्राप्त विषयभोगो को भोगने का

६ कायोत्सर्गः—

चित्त की एकाग्रता के लिये की जाने वाली क्रिया-विशेष को कायोत्सर्ग या काउत्सग्ग कहा जाता है। सामायिक प्रतिक्रमण आदि क्रियाओ में 'काउसग्ग' किया जाता है। मन, वचन काया की प्रवृत्ति को रोक कर पूर्ण समाधि भाव में आ जाना कायोत्सर्ग है। मन की एकाग्रता से सकल आस्रवो का निरोध हो जाता है और आत्मा अनन्त कर्म वर्गणाओ का क्षय कर डालता है। मोक्षमार्ग की मंजिल को पाने मे इसका बहुत अधिक महत्त्व है।

संवत्सरी प्रतिक्रमण मे १००८ श्वासोच्छ्वास का काउसग्ग करना चाहिये। 'चदेसु निम्मलयरा' तक लोगस्स का पाठ गिनने मे २५ श्वासोच्छ्वास होते है। चालीस लोगस्स गिनने से १००० श्वासोच्छ्वास तथा एक नवकार गिनने से ८ श्वासोच्छ्वास यो एक हजार आठ श्वासोच्छ्वास होते हैं। लोगस्स न आता हो तो १६० नवकार गिनना चाहिये। चौमासी प्रतिक्रमण मे २० लोगस्स, पाक्षिक प्रतिक्रमण में बारह लोगस्स का कायोत्सर्ग करना चाहिये। एक नवकार के काउसग्ग मे १९६३२६७ $\frac{?}{?}$ पल्योपम का तथा एक लोगस्स के काउसग्ग से ६१३५२१२ $\frac{?}{?}$ पल्योपम का देवायु का बंध होता है।

इस प्रकार बाह्य आभ्यन्तर तप के स्वरूप को समझ का गोपन किये बिना अनुपम मंगलमय तप

[illegible]

[illegible]—

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

तीसरा व्याख्यान

चैत्य-परिपाटी तथा एकादश वार्षिक कर्त्तव्य

विशुद्धि का पर्व

महामहिमामय श्री पर्युषण महापर्व का आज तीसरा दिन है। इन दिनो मे एक अनोखा उल्लासमय वातावरण दृष्टिगोचर हो रहा है। आत्मशुद्धि के इन मगलमय दिवसो में धार्मिकता का उमडता हुआ प्रवाह आप सब मुमुक्षुओ के अन्त करण से प्रवाहित होता हुआ परिलक्षित हो रहा है। जिस प्रकार सुगध से भरा हुआ फूल अपने सौरभ से आसपास के वातावरण को सुरभित कर देता है इसी तरह मानव की मनो-भूमिका मे उत्पन्न होने वाले सद्भाव के सुमन भी आस-पास के वातावरण को सुरभित बना देते है। यह एक माना हुआ सत्य है कि मानव के मन में उद्भूत प्रत्येक अच्छा या बुरा विचार वातावरण पर अपना प्रभाव अकित किये बिना नही रहता। अच्छी भावनाओ का अच्छा असर होता है और बुरी भावनाओ के कारण वातावरण भी दूषित हो जाता है। हमारे यहां पर्युषण पर्व की आराधना हो रही है, इस प्रसग पर प्राय प्रत्येक व्यक्ति के मन मे सद्भावनाओ का उद्गम

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

को देख कर कई आसन्न भव्य प्राणी उनके प्रति भक्तिभाव पूर्वक आकर्षित होते हैं और मिथ्यात्व का निकन्दन कर सम्यक्त्व की प्राप्ति करते हैं। मोक्ष-प्रसाद की नींव सम्यक्त्व ही है। अतः सम्यक्त्व प्राप्ति का बहुत अधिक महत्त्व माना गया है। चैत्य-परिपाटी सम्यक्त्व का महत्वपूर्ण अंग है। यह इसलिये भी अधिक प्रभावशाली अंग है कि यह स्वयं की समकित को निर्मल करने के साथ ही साथ अन्य अनेकों प्राणियों को सम्यक्त्व प्राप्त करने में सहाय-भूत होता है। अतएव पर्युषण पर्व के पवित्र दिवसों में चैत्य परिपाटी रूप सत्कर्त्तव्य की भाव पूर्वक आराधना करना स्व-पर के कल्याण का कारण माना गया है। इसके संबंध में श्री वज्रस्वामीजी महाराज का वृत्तान्त मननीय है। वह इस प्रकार है:-

श्री वज्रधरस्वामीजी महाराज का चमत्कार

किसी समय श्री वज्रस्वामीजी महाराज पूर्व दिग्विभाग से उत्तर दिग्विभाग में पधारे, तब वहाँ भयंकर दुष्काल पड़ा हुआ था। लोगों को पेट भरने में तकलीफ पड़ती थी। दान-शालाएँ बन्द हो गई थीं। मुनिवरों को निर्दोष आहार प्राप्ति में बड़ी कठिनाई होती थी। मुनिगण जब श्रावकों के घरों में आहार-प्राप्ति के लिये जाते तो स्वयं श्रावक भी "आहार दूषित है" ऐसा कह कर टाला ले लेते थे क्योंकि उनके परिवार के लिये भी आहार की तंगी थी।

दुष्काल के कारण ऐसी कदर्थना होती हुई देख कर

राजा बौद्धानुयायी था अतः उसने सत्ता के बल से आदेश दे दिया कि "जैनियो को पुष्प न बेचे जाए"। इससे सिर मे गूंथने के लिये भी जैनियो को पुष्प नही मिलते थे। क्योकि बौद्धो की मान्यता थी कि इस बहाने पुष्प खरीद कर जैन लोग जिन–मन्दिरो मे पुष्प चढा कर सुन्दर शोभायमान पूजा कर सकेगे। राजा की आज्ञा के कारण अधिक मूल्य देने पर भी जैनियो को पुष्पादिक नही मिल पाते थे। इसलिये जिन–मन्दिरो मे साधारण रीति की पूजा ही की जाने लगी। मुह मागा मूल्य देने की तैयारी होने पर भी पुष्प न मिलने के कारण जैनियों के हृदय मे भारी खटक थी। अपने आराध्य देव जिनेश्वर भगवतो की यथोचित पूजा न कर सकने के कारण जैनो के दिलो मे भारी दुख भरा था।

इधर श्री पर्युषण पर्व समीप आ गये। जैनियो को यह बात अधिक खटकने लगी 'क्या पर्वाधिराज पर्युषण के दिनो में भी भगवान् की सुन्दर रीति से पूजा न हो सकेगी ? यह विचार आते ही हृदय में गहरी वेदना हुई। श्रावक सघ एकत्रित हुआ। विचार–विमर्श के पश्चात् श्रावक संघ आचार्य भगवान् श्रीमद् वज्रस्वामीजी महाराज की सेवा में गया और उन्हे सारी बात निवेदित की। अश्रुपूर्ण नयनो से श्रावक–संघ ने आचार्य भगवान् से विनति करते हुए कहाकि, "श्री जिन–चैत्यो में प्रतिदिन विशेष प्रकार की पूजाएँ होती हुई देखकर ईर्षालु बौद्धो ने राजा से कह कर हमे पुष्प न देने का आदेश निकालवा दिया है। इस राजाज्ञा के कारण हमे पुष्प नही

[illegible]

[illegible]

जिन मन्दिरो की उन पुष्पो से पूजा की। इस चमत्कार मे जैन शासन की महती प्रभावना हुई और पुरी के राजा ने बौद्ध धर्म छोड कर जैन धर्म स्वीकार किया।

आचार्य भगवान् श्रीमद् वज्रस्वामीजी महाराज दस पूर्वो के धारक थे और अतिशय ज्ञानी तथा आगम व्यवहारी थे। ऐसे महापुरुषो की बात निराली ही है परन्तु इस वृत्तान्त पर से यह सूचित होता है कि पर्वाधिराज श्री पर्युषण पर्व को अट्ठाई के दिनो मे सुश्रावको को जिन मन्दिरो मे विशेष रूप से जिनेश्वर भगवतों की पूजा करनी चाहिये। अपनी शक्ति के अनुसार श्रावको को उल्लास पूर्वक उत्तम साधनो के द्वारा पूजा करनी चाहिये। इसमे भी जैन शासन की प्रभावना है। श्रावक चैत्य परिपाटी करने के लिये निकले तब पूजा की उत्तम सामग्री साथ लेकर निकले। इससे दूसरो को भी प्रेरणा मिलती है और अन्य लोगो पर भी सुन्दर छाप पड़ती है। अपने यहाँ पूजा-भक्ति के जैसे उत्तम साधन बताये गये है वैसा अन्यत्र नही है। अत. उससे दूसरो पर प्रभाव पडता ही है। इस प्रकार चैत्य परिपाटी शासन की प्रभावना का कारण होने के साथ ही साथ सम्यक्त्व की निर्मलता का निमित्त है।

चैत्यों का सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व :

यद्यपि चैत्यो का मूलभूत उद्देश्य धार्मिक और आध्यात्मिक विकास है तदपि उनके सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व को भी ओझल नही किया जा सकता। जैन संस्कृति के

की सम्पत्ति को चैत्य निर्माण मे लगा कर वास्तव मे जैन शासन की महती सेवा बजाई है। उन्होने अनेक भव्यात्माओ के लिये सम्यक्त्व का द्वार खोलने का उपकार तो किया ही है साथ ही जैन सस्कृति को ऐतिहासिक अमरता भी प्रदान की है।

विषम काल में आलम्बन :

देवाधिदेव तीर्थङ्कर भगवान् के साक्षात् अभाव में विषम दु षम काल में ज्ञानी भगवतो ने तीन आलम्बन फरमाये हैं–जिन बिम्ब, जिनागम और जिन चैत्य। इन तीन का आलम्बन लेकर पचम विषम काल में भव्य जीव मोक्षमार्ग की आराधना कर सकते हैं। ज्ञानी भगवतो के इस फरमान से सहज ही समझा जा सकता है कि इन तीन आलम्बनो का कितना अधिक महत्त्व है। यही कारण है कि महाराजा सम्प्रति, कुमारपाल आदि राजाओ ने, उदायन–सज्जन विमलशाह आदि मन्त्रियो ने तथा कई धनकुबेर शाहों ने अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग जिन–मन्दिरो के नवनिर्माण तथा जीर्णोद्धार में किया है।

सज्जन मंत्रीश्वर ने तीर्थराज गिरनार पर्वत पर भगवान् श्री नेमिनाथजी के मन्दिर के जीर्णोद्धार का बहुत बड़ा काम अपने हाथ में लिया। उसने सौराष्ट्र के सेठो को बुलवाया। उनके सामने उस महान् कार्य की रूपरेखा प्रस्तुत की। ठाणा देवली के भीमा सेठ ने अपनी सम्पत्ति इस कार्य

कोई एक चीज मांगने का कहा था। उक्त दम्पति ने सन्तान की मांग न रखते हुए मन्दिर के निर्माण मे सहायता की इच्छा व्यक्त की। कितनी महान् है इस दम्पति की प्रभु-भक्ति! अपनी सम्पत्ति को मन्दिर-निर्माण में लगा कर विमलशाह ने अक्षय पुण्य संचय करने के साथ ही ऐतिहासिक अमरता प्राप्त कर ली। न केवल जैन संसार में ही अपितु सारे विश्व में उनकी यशोगाथा युगयुगान्त तक गाई जाती रहेगी। सन्तान के जरिये से अमर रहने की मानव की अभिलाषा वास्तव में मूर्खता पूर्ण है। अपने सत्कार्यों के द्वारा उपार्जित यशो राशि ही व्यक्ति को अमरता प्रदान करती है।

इस प्रकार आपके पूर्व-पुरुषो ने भव्य चैत्यो का निर्माण करवाया है। एसा करके उन्होने भव्य जीवो के लिये कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। जिन चैत्य और जिन-बिम्ब का आलम्बन लेने से भावना की विशुद्धि होती है, प्रमोद भाव की जागृति होती है, भक्ति मे रग जम जावे और उल्लास आ जावे तो प्रभुदर्शन से कल्याण हो जाता है। प्रभुदर्शन से कल्याण की प्राप्ति, वन्दन से इच्छित-प्राप्ति तथा पूजन से इहलोक-परलोक की पुण्य सम्पत्ति यावत् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इन बातो पर ध्यान देकर पर्युषण पर्व के पवित्र दिवसो में चैत्य-परिपाटी रूप सत्कर्त्तव्य का भलीभाति आराधन करना चाहिये।

इस प्रकार अमारि प्रवर्तन, स्वधर्मी वात्सल्य, क्षमापना, अष्टम तप की आराधना और चैत्य परिपाटी रूप पाच सत्कर्त्तव्यो का निरूपण किया गया है।

इन पांच सत्कर्त्तव्यो की आराधना के द्वारा पर्युषण पर्व की वास्तविक सफलता होती है। आशा है, आप सब इनको हृदयगम करके व्यवहार मे लावगे और अपनी आत्मा को कल्याण के मार्ग पर अग्रसर करेंग।

एकादश वार्षिक कृत्य :

सघार्चादि सुकृत्यानि, प्रतिवर्षं विवेकिना।
यथाविधि विधेयानि, एकादशमितानि वै ॥

मानव-जीवन की सफलता ऐश-आराम या भोगोपभोग से नही अपितु धर्माचरण और सत्कृत्यो से होती है। मानव-शरीर अलकारो या सुन्दर वेशभूषा से सुशोभित नही होता अपितु परोपकार, दान, तप, सयम आदि सद्‌गुणो से अलकृत होता है। कान की शोभा कुण्डल से नही, शास्त्र श्रवण से होती है, हाथ की शोभा ककण से नही दान से होती है; चरणो की शोभा नूपुरो या सुन्दर उपानहो से नही बल्कि तीर्थगमन से होती है। चिन्तामणि रत्न क समान सुदुर्लभ मानव-शरीर को भोगोपभोग मे लगाय रखना सोने क पात्र में कूडाकचरा भरने के समान है। अतएव विवेक सम्पन्न मानव का कर्त्तव्य है कि वह अपने जीवन को धर्माचरण के द्वारा

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पहेरामणी आदि बहुमान पूर्वक प्रदान करना सघ-पूजा के अन्तर्गत आता है। सघ पूजा तीन प्रकार की कही गई है-१ उत्कृष्ट, २ मध्यम और ३ जघन्य। सकल सघ की बहुमान पूर्वक भक्ति करना, समस्त श्रावक श्राविका सघ को आदर पूर्वक भोजन कराकर पहेरामणी करना उत्कृष्ट सघ पूजा है। वस्तुपाल महामत्री प्रतिवर्ष सघ को अपने घर आमन्त्रित करते थे और विपुल द्रव्य खर्च करके बहुमान पूर्वक सघ की भक्ति करते थे। इतना आर्थिक सामर्थ्य न होने पर कम से कम साधु साध्वियो को मुहपत्ति तथा श्रावक श्राविकाओ को एक एक सुपारी बादाम इलायची देकर भी जघन्य सघ पूजा के सत्कृत्य की आराधना करनी चाहिये। उत्कृष्ट और जघन्य के बीच मे अपनी शक्ति के अनुसार यथाशक्ति सघ की पूजा भक्ति करना मध्यम पूजा है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि सघ पूजा मे भाव-भक्ति का जितना अधिक महत्त्व है उतना साधन सामग्री का नही। अत. यह कोई जरूरी बात नही है कि सम्पन्न धनवान् व्यक्ति ही सघ पूजा कर सकते है, निर्धन व्यक्ति सघ पूजा क्या करे? सघ पूजा की भावना हो तो निर्धन भी सम्यक् प्रकार से सघ पूजा कर सकता है और उसके द्वारा की जाने वाली सघ पूजा का विशेष महत्त्व होता है। क्योंकि कहा गया है कि-सम्पत्ति होने पर नियम (परिग्रह-परिमाण), शक्ति होने पर सहनशीलता, युवावस्था मे ब्रह्मचर्य और दरिद्र अवस्था मे किया गया थोडा भी दान; ये चार वस्तुएँ महा लाभ प्रदान करने वाली होती है। इस विषय मे श्रावक रत्न पुणिया श्रावक का उदाहरण मननीय है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

लित नही हुए ! मगध का सम्राट् श्रेणिक उनको एक सामायिक के बदले अपना समस्त वैभव और साम्राज्य देने को तत्पर है परन्तु पुणिया श्रावक को उसकी रच मात्र भी इच्छा नही है। वह अपने आत्मिक वैभव और सतोष के महासागर मे निमग्न है, बाह्य धन दौलत उसकी शान्ति को भग करने मे समर्थ नही है। यही कारण है कि देवाधिदेव तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर देव के मुखारविन्द से उसकी प्रशसा के शब्द निकले। पुणिया श्रावक की यह सघ पूजा, धनकुबेरो द्वारा की जाने वाली पूजा से कही अधिक श्रेष्ठ है।

पुणिया श्रावक के इस उदाहरण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उदारता आत्मा का गुण है। धनवान ही उदारता बता सकते है, धनवान ही धर्म के साधनों को बना सकते है, ऐसी कोई बात नही है। धर्म की भावना वाले साधारण व्यक्ति भी लाभ ले लेते है और धनवान् कोरे ही रह जाते है। धर्म के लिये पौद्गलिक पदार्थों का भोग देने की वृत्ति जब आती है तभी धार्मिक अनुष्ठान आनन्द पूर्वक सम्पन्न किये जा सकते है। ऐसे ही व्यक्ति धर्म को दीपा सकते है।

वर्तमान मे अधिकांश व्यक्तियो को धर्म की अपेक्षा सांसारिक पौद्गलिक पदार्थों के प्रति विशेष आकर्षण है इसलिये वे धार्मिक अनुष्ठानो की अवहेलना कर देते हैं। धर्म की अपेक्षा धन को महत्व देने वाले व्यक्ति कदापि धर्मानुष्ठान नही कर सकते और न सुख-शान्ति का आनन्द ही ले सकते है। जीवन में सतोषवृत्ति और सात्विकता आये बिना सच्चे सुख की अनुभति

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

श्रावकों की तरह श्राविकाओं का भी वात्सल्य यथा-योग्य बहुमान पूर्वक करना चाहिये। सधवा हो या विधवा, कुमारिका हो या युवती और वृद्धा हो, श्रीमंत हो या गरीब हो जो कोई भी जिनेश्वर देव की आज्ञा में चलने वाली हो उसका भक्तिभाव पूर्वक वात्सल्य करना चाहिये।

कोई यह शंका कर सकता है कि स्त्रियों की जगह २ निन्दा की गई है, उन्हें नरक का द्वार कहा गया है, मोह का मन्दिर बताया गया है, उनमें झूठ, अविवेक, कपट, मूर्खता, आतुरता, अतिलोभ, अपवित्रता और निर्दयता ये आठ दोष स्वभावतः बताये गये हैं। सूर्यकान्ता, चूलणी, कपिला, नागश्री आदि स्त्रियों ने अपने दुष्कर्मों से इसे साबित कर दिया है तो स्त्रियों का बहुमान क्यों करना चाहिये ?

इसका समाधान करते हुए शास्त्रकारों ने कहा है कि पापाचरण और धर्माचरण का संबंध पुरुषत्व या स्त्रीत्व के साथ अविनाभूत नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि स्त्रियों में ही दुष्टता आदि दुर्गुण भरे होते हैं और पुरुष मात्र सदाचारी और गुणवान होते हैं। पुरुषों में अनेक महाक्रूर, नास्तिक देव-गुरु के निन्दक और विश्वासघाती देखे जाते हैं। खून, हत्या ठगाई आदि भयंकर पापकर्म करने वाले पुरुषों की संख्या कम नहीं है। अतएव स्त्रियों को हीन दृष्टि से देखना अविवेक पूर्ण है। स्वाध्याय रत्नावली में कहा गया है—

"सती स्त्रियाँ निर्मल और पवित्र हैं। मोह का मन्दिर होते हुए भी वे मोह का नाश करती हैं। ये सच्ची गृहिणी

जनसमुदाय के 'जय जय' के तुमुल घोष के साथ श्री जिनेश्वर देव का स्वर्ण का रथ तैयार किया। वह स्वर्णरथ मेरु पर्वत के समान सुशोभित लगता था। उस रथ पर विशाल दण्ड वाली ध्वजा थी। उस पर छत्र लगे हुए थे। दोनो तरफ श्वेत शुभ्र और मनोहर चवर ढोरे जा रहे थे। इस रथ मे प्रक्षालन, विलेपन और पुष्पो से अग रचना की हुई श्री पार्श्वनाथ प्रभु की मूर्ति स्थापन की हुई थी। सकल सघ ने उत्साह पूर्वक ऋद्धि सहित उस रथ को कुमारपाल राजा के राजद्वार पर लाकर स्थापित किया। उस समय वाद्यो और वादित्रो का नाद दसो दिशाओ को गुजायमान कर रहा था। सुन्दर तरुण स्त्रियो का समूह रथ के आगे नृत्य कर रहा था। उस रथ को सामन्त तथा प्रधान राजमहल में ले गये। तत्पश्चात् कुमारपाल राजा ने रथ मे रही हुई प्रभुजी की प्रतिमा का पट्ट वस्त्र तथा स्वर्ण के अलकारो से पूजन किया। विविध नृत्य गान करवाये। धार्मिक आनन्द पूर्वक रात्रि व्यतीत कर राजा रथ सहित नगर के बाहर आये। वहा बनाये गये भव्य मण्डप मे रथ को स्थापित किया। राजा ने रथ मे रही हुई प्रतिमा का पूजन किया और चतुर्विध सघ के समक्ष स्वय ने आरती उतारी। तत्पश्चात् रथ में हाथी जोत कर उसे नगर में चल समारोह पूर्वक धूमधाम से घुमाया। स्थान स्थान पर बाधे गये मडपो में विस्तार वाली रचना द्वारा उत्सव को दीपाया। कुमारपाल महाराजा द्वारा की गई रथ यात्रा के अनुसार श्रावको को रथयात्रा का आयोजन अवश्यमेव करना चाहिये।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

जिन महान् आत्माओ ने जिन जिन स्थानो पर रह कर आत्मा का कल्याण किया है उनका निमित्त लेकर अपनी आत्मा का कल्याण करने के शुभाशय से तीर्थयात्राएँ की जाती है। मौज-शौक के खातिर किये जाने वाले प्रवासो को तीर्थयात्रा का नाम नही दिया जा सकता। जिस यात्रा का ध्येय आध्यात्मिक न होकर सांसारिक और पौद्गलिक ममता को बढाने का होता है वह प्रवास मात्र है तीर्थयात्रा नहीं। महा आरम्भ और महा परिग्रह के कारण भूत कल कारखानो को देखने जाना, बाँधो को देखना और विविध नगरो के बाह्य दृष्टि से गिने जाने वाले दर्शनीय स्थानो को देखने की उत्कंठा रखना तीर्थयात्रा के समय अनुचित है। मौज शौक के लिये तीर्थ स्थानो मे जाना कमाने की जगह जाकर खो कर आना है। तीर्थयात्रा के दौरान पौद्गलिक सुखशीलता का त्याग करना आवश्यक है। इस सुखशीलता और अनुकूलता की इच्छा से आत्मा अनन्तकाल से संसार में भ्रमण कर रहा है। अतएव तीर्थस्थानो मे सहनशीलता का अभ्यास करना और देह की ममता तथा पौद्गलिक राग को अल्प करने का यथाशक्य प्रयत्न करना चाहिये। तीर्थयात्रा के समय आत्मा नवीन उपलब्धि को प्राप्त करे, इस बात की तरफ लक्ष्य देना जरूरी है। इसी दृष्टि से तीर्थयात्री के लिये छह 'री' के नियम बताये गये हैं।

रसनेन्द्रिय की लम्पटता का कम करने के लिये तथा भोजन की खटपट मे अधिक समय न निकल जाय इस दृष्टि

प्रतिक्रमण, गुरु वदन, योग हो तो व्याख्यान श्रवण, नवकार मत्र का स्मरण, गुरु भक्ति, सार्धमिक भक्ति, आदि को करते रहना सम्यक्त्वधारी रूप चतुर्थ 'री' है।

तीर्थयात्रा के दौरान सचित्त पदार्थों का त्याग करना चाहिये। इससे करुणा का विस्तार होता है। इन्द्रियो पर अकुश रहता है और जीवन मर्यादित बनता है। यह सचित्तहारी रूप पचम 'री' है।

तीर्थयात्रा के काल मे ब्रह्मचारी रहना आवश्यक है। जीवन को सयमित, मर्यादित और विशुद्ध बनाने के लिये ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यत जरूरी है। भोगोपभोगो का त्याग आत्मिक अभ्युदय के लिये आवश्यक है। यह ब्रह्मचारी रूप छठी 'री' है।

उक्त छह 'री' का यथावत् पालन करते हुए तीर्थयात्रा करनी चाहिये। पूर्वकाल में अनेक राजाओ, मत्रियो और सेठ साहूकारो ने ऐसी तीर्थयात्राएँ की है।

प्रखर तार्किक, महाकवि, कल्याण मन्दिर स्तोत्र के रचयिता पूज्य आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी म० के सदुपदेश से प्रतिबुद्ध महाराजा विक्रमादित्य ने श्री शत्रुजय गिरिराज का सघ निकाला था जिसमे १६९ स्वर्ण के, ५०० हाथी दात तथा चन्दन के जिनालय थे। श्री सिद्धसेन दिवाकर आदि पाच हजार आचार्य महाराज थे। चौदह मुकुट-बद्ध राजा, सित्तर लाख श्रावको के कुटुम्ब एक करोड दस

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

व्यक्ति सब पर्वो मे ऐसा कर सकने मे समर्थ नही है उसे वर्ष मे एक वार तो स्नात्र-महोत्सव करना ही चाहिये। ग्रन्थो मे कहा गया है कि श्री पेथडशाह मन्त्रीश्वर ने श्री रेवतागिरिजी (गिरनारजी) पर स्नात्र-महोत्सव मे छप्पन घडी प्रमाण स्वर्ण का व्यय कर इन्द्रमाला पहनी थी। तथा शत्रुजय से गिरनार तक का एक स्वर्ण-ध्वज चढाया था। उनके पुत्र झांझण ने उतना ही वडा रेशमी वस्त्र का ध्वज चढाया था। जिनेश्वर देव के प्रति की गई भक्ति मुक्ति की निस्सरणी है। जैसे जैसे भक्ति मे आह्लाद बढता जाता है वैसे वैसे अनेक जीवो को भक्ति मे सम्मिलित होने का मन होता है। अतएव स्नात्र-महोत्सव द्वारा प्रभुजी की भक्ति का आनन्द लेना चतुर्थ वार्षिक कर्त्तव्य वताया गया है।

(५) देवद्रव्य की वृद्धि :

विवेक सम्पन्न श्रावक को अपने द्रव्य का सदुपयोग देवद्रव्य की वृद्धि के लिये करना चाहिये। मौजशौक या ऐश आराम में सम्पत्ति को खर्च करना सम्पत्ति का दुरुपयोग है तथा पापानुबंध का कारण होता है। अतएव पुण्य से मिली हुई लक्ष्मी का उपयोग पुण्यानुबंधी शुभ कार्यो मे ही करना चाहिये। देवद्रव्य की प्रतिवर्ष वृद्धि करने के लिये उपधान की माला, संघ में तीर्थमाला, इन्द्रमाला आदि की बोली बोलकर धारण करनी चाहिये। एक बार श्री गिरनारजी तीर्थ पर श्वेताम्बर और दिगम्बर संघ एक साथ यात्रा करने के लिये आये थे। उस समय तीर्थ के स्वामित्व के विषय में दोनों में

[illegible]

[illegible]

(६) बड़ी पूजा:—

प्रतिवर्ष श्रावक-श्राविकाओं को एक बडी पूजा पढानी ही चाहिये। जिन मदिरो मे महोत्सव पूर्वक पूजा कराना अट्ठाई महोत्सव आदि उत्सव आयोजित कर विशिष्ट प्रभु-भक्ति करना चाहिये। यह मुद्रालेख सदा याद रखना चाहिये कि "जिनवर पूजा रे ते निज पूजना रे"। अर्थात् जिनेश्वर देव की पूजा करना अपनी आत्मा की पूजा करना है। आत्मा की पूजा करना अर्थात् आत्मकल्याण के द्वार को खोलना है। आर्द्रकुमार ने जिन-प्रतिमा के दर्शन से आत्म कल्याण का मगलमय द्वार खोल लिया था। अतएव उल्लास पूर्वक बडी पूजा का आयोजन करना चाहिये। पूजा की विधि और पूजा की सामग्री सब विशुद्ध और उत्तम श्रेणी की होनी चाहिये। पूजा पढाते समय यह ध्यान में रखने की बात है कि लौकिक दृष्टि का उतना महत्व नही है जितना जिनेश्वर देव के प्रति प्रीति और भक्ति का है। इसको ही प्रधानता देकर उत्तम पूजा की सामग्री से उल्लास पूर्वक बडी पूजा पढ़ानी चाहिये। यह छठा वार्षिक कृत्य है।

(७) रात्रि-जागरण

अपने हृदय में रही हुई प्रभु-भक्ति को व्यक्त करने के लिये तथा वातावरण में भक्ति के प्रवाह को प्रवाहित करने के उद्देश्य से रात्रि-जागरणों का आयोजन होता है। सांसारिक कार्यों से निवृत्ति लेकर उन निवृत्ति के [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

क्रिया मिल कर मोक्ष के कारण होते हैं। एकान्त क्रिया अथवा एकान्त ज्ञान मोक्ष के निमित्त नहीं होते। ज्ञान और क्रिया का समन्वय होना जरूरी है। क्रिया की सफलता ज्ञान से है और ज्ञान की सार्थकता क्रिया से है। अतएव मोक्षमार्ग की आराधना के लिये ज्ञान और क्रिया का सामञ्जस्य आवश्यक है।

किसी भी मजिल पर पहुँचने के लिये रास्ता बताने वाले नेत्रों की आवश्यकता होती है ताकि सही रास्ते पर कण्टकों और गडहो से बचते हुए प्रगति की जा सके। साथ ही पैरों में चलने की शक्ति भी चाहिये ताकि निर्दिष्ट मार्ग पर चलते चलते मजिल हासिल करली जाय।

इसी तरह मोक्ष की मजिल को प्राप्त करने के लिय ज्ञान, नेत्र की तरह मार्ग बताने वाला है और क्रिया, पांव की तरह मजिल की तरफ प्रयाण कराने वाली है। ज्ञान के बिना क्रिया अन्धी है और क्रिया के बिना ज्ञान पगु है। यदि ये दोनों अलग अलग रहते हैं तो दोनों ही मजिल पर पहुँचने मे असमर्थ होते है। यदि ये दोनो मिल जाते है तो दोनो ही मजिल पर पहुँच सकते है। लगडा व्यक्ति अधे के कधे पर बैठकर–अधे की सहायता से पार हो जाता है और अन्धा व्यक्ति लगडे के द्वारा मार्ग बताये जाने स मजिल पा लेता है। इस अध पगु न्याय के समान ज्ञान और क्रिया मिल कर मोक्ष की मजिल तक पहुँचा देते है। इसलिये विवेकवान श्रावको को धार्मिक अनुष्ठान रूप क्रियाओ के साथ श्रुतज्ञान की भक्ति और आराधना अवश्यमेव करनी चाहिय।

मय गुफा में अनन्तकाल तक इधर-उधर रखड़ने के सिवाय और कोई चारा नही है। ज्ञान का प्रकाश ही संसार-कन्दरा मे पार पहुँचाने वाला है। ज्ञान के अभाव में श्रेयस् और अश्रेयस्, धर्म और अधर्म, पुण्य और पाप, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य जीव और अजीव, तत्त्व और अतत्त्व का विवेक ही संभव नही है तो बेचारा अज्ञानी जीव क्या साधना कर सकेगा? साधना के लिये ज्ञान का होना जरूरी है। इसलिये कहा गया है—

पढमं नाणं तओ दया एवं चिट्ठई सव्व संजए।
अन्नाणी किं काही किं वा णाहीउ सेय पावगं॥

—दशवेकालिक सूत्र

अर्थात्-मुमुक्षु को पहले तत्त्व-अतत्त्व का ज्ञान करना चाहिये। इसके बाद ही संयम का आचरण हो सकता है। संयमी जीवन का मूल आधार ज्ञान है। अज्ञानी आत्मा श्रेय और अश्रेय को कैसे पहिचानेगा? अतएव ज्ञान को मोक्ष का प्रथम सोपान कहा जा सकता है। लोक में रत्न, दीपक, चन्द्रमा और सूर्य प्रकाशमान तत्त्व माने जाते हैं परन्तु ज्ञान सबसे अधिक उत्कृष्ट प्रकाशमान तत्त्व है। उक्त पदार्थों का प्रकाश तो सीमित क्षेत्र में और सीमित मात्रा मे होता है परन्तु ज्ञान का प्रकाश लोकालोक व्यापी और अनन्त होता है। सम्यग् ज्ञान वही है, जो मोक्ष की साधना मे उपयुक्त है जो संसार साधक हो वह मिथ्याज्ञान एवं अज्ञान है।

[illegible]

[illegible]

पचमी तप, बीस स्थानक तप, रोहिणी तप आदि ज्ञान-दर्शन चारित्र के आराधन भूत विविध तप की समाप्ति के उपलक्ष मे उद्यापन करना चाहिये। यह नौवा वार्षिक कर्त्तव्य है। कम से कम वर्ष मे एक उद्यापन तो अवश्य करना ही चाहिये।

उद्यापन करने से तप के फल में वृद्धि होती है। कहा गया है कि–

"तप–फल वाधे रे उजमणा थकी, जिम जल पकजनाल" जैसे पानी से कमल–नाल की वृद्धि होती है वैसे ही उजमणा से तप के फल की वृद्धि होती है।

तप का उद्यापन करना मानो तप रूप मन्दिर पर कलश चढ़ाना है, अक्षत पात्र पर फल रखना है और भोजन कराने के पश्चात् ताम्बूल अर्पण करने के समान है। तप के उद्यापन से तपस्वियो का बहुमान होता है तथा सघ मे तप के प्रति सद्भाव प्रकट होता है। मत्री श्री पेथडकुमार ने नवकार मत्र के तप का उद्यापन किया था। उसमे सोना, मणि, मोती, रुपये, पकवान, फल, रेशमी ध्वजाएँ आदि प्रत्येक वस्तु ६८-६८ रख कर चमत्कारिक उद्यापन किया था। इस प्रकार यथाशक्ति तप का उद्यापन करना नौवा वार्षिक कर्त्तव्य कहा गया है।

(१०) शासन प्रभावना :

जैन–शासन की महिमा को बढाने वाले कार्यों को करना शासन-प्रभावना है। श्री गुरु महाराज के प्रवेश-महोत्सव

[illegible]

[illegible]

का स्वागत-समारोह ठाठ-बाठ से आयोजित करे। पूज्य, पूजा की इच्छा नही करता और पूजक पूज्य की पूजा किये बिना नही रहता, यह श्रेष्ठ मर्यादा है। इस मर्यादा का पालन करना चाहिये। व्यवहार भाष्य मे साधु-प्रतिमा-वहन के अधिकार मे कहा गया है कि "साधु सम्पूर्ण प्रतिमा वहन करले तब एकायक नगर मे प्रवेश न करे परन्तु समीप मे आकर किसी साधु या श्रावक को अपना दर्शन दे या सदेशा पहुँचावे जिससे नगर का राजा या मत्री अथवा ग्राम का अधिकारी महोत्सव पूर्वक प्रवेश करावे। उसके अभाव मे श्रावक वर्ग और सघ प्रवेशोत्सव करावे।"

शासन की प्रभावना के निमित्त वरघोडा, प्रवेश महोत्सव, कल्याण महोत्सव, उद्यापन, प्रतिष्ठा महोत्सव, साधर्मिक वात्सल्य उपधान तप, पद यात्रिक सघ आदि की आयोजना करते रहना चाहिये। ये सब कार्य अनेक जीवो को धर्ममार्ग के प्रति आकर्षित करने वाले और बोधि-बीज की प्राप्ति के कारण होते है। अतएव विविध प्रकार के आयोजनो द्वारा जैन शासन की प्रभावना करना चाहिये। यह दसवा वार्षिक कृत्य है।

(११) आलोचना-विशोधि :

आत्मा के कल्याण के लिये आलोचना का बहुत अधिक महत्त्व होता है। जिस प्रकार मेला कपडा साबुन और पानी से शुद्ध होता है उसी प्रकार किये गये पापो की शुद्धि आलो-

[illegible] के [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

रीति से किया गया है उसे उसी रूप मे सही सही गुरु महाराज के समक्ष प्रकट कर देना और वे उसकी शुद्धि के लिये जो प्रायश्चित्त दें उसे अंगीकार करना, यह बात हृदय की सरलता होने पर ही हो सकती है। सामान्य तौर पर तो लोग अपने अपराध को स्वीकार ही नही करते हैं। अपराध को छिपाने का प्रयत्न करते है। प्रकट हो जाने पर भी "मैंने नही किया" कहने की धृष्टता करते है। ऐसे व्यक्ति अपनी शुद्धि नही कर सकते। जिस प्रकार शरीर के किसी भाग मे कांटा लग जाने पर जब तक कांटा अन्दर बना रहता है तब तक चैन नही पडती। कांटा निकल जाने पर ही शान्ति मालूम होती है। उसी तरह पापकर्म का शल्य जब तक अन्दर बना रहता है तब तक विशुद्धि नहीं हो सकती। पाप कर्म के शल्य को आलोचना के द्वारा निकाल फेंकने पर ही आत्मा की विशुद्धि हो सकती है और शान्ति की वास्तविक अनुभूति भी तभी हो सकती है। इसीलिये सच्ची शान्ति और आत्म-शुद्धि के लिये पापकर्म की आलोचना शुद्ध और सरलभाव मे अवश्य ही कर लेना चाहिये।

आलोचना या पश्चात्ताप ऐसा अमृत का झरना है जिसमे अवगाहन करने से भयकर पाप का ताप शान्त हो जाता है, मन की मलिनता और मैल धुल जाता है, हृदय स्वच्छ बन जाता है और आत्मा परम शान्ति का अनुभव करने लग जाता है। इस विषय पर निम्न उदाहरण मननीय है—

झांझरिया मुनिवर बाजार मे से निकल रहे है। राजा—

का पार नही रहा। विना विचारे, मुनि हत्या का घोर पाप कर डालने के कारण अन्त.करण मे तीव्र बेचैनी है, आँखो में आँसू लाकर मुनिराज के मृत देह से क्षमायाचना करता है। पश्चात्ताप की अग्नि में घोर पाप को भस्म कर डालता है। पश्चात्ताप के झरने में पाप मैल को धो डालता है और राजा भी केवल ज्ञानी बन जाता है। यह है महिमा पश्चात्ताप और आलोचना की! अनेक महापापी भी आलोचना के प्रताप से तिर गये हैं। इसलिये श्रावक का यह कर्त्तव्य है कि वह वर्ष में एक बार अपने पापो की आलोचना पू गुरु महाराज के समक्ष अवश्यमेव करके आत्मा को शुद्ध करले। यह ग्यारहवा वार्षिक सत्कृत्य है।

इस प्रकार जिनेश्वर देव के मार्ग क रसिक जीव पाच सत्कर्त्तव्य और एकादश वार्षिक कृत्यो के आराधन द्वारा अपने जीवन को धन्य बनाते है। आत्म-परिणति को निर्मल बनाये बिना जीवन की सफलता नही हो सकती। प्रमाद के वश में पडा हुआ प्राणी पाप मे पडता है और सुख के लिये पाप करता है। परन्तु यह उसकी भ्रमणा मात्र है। पापकर्म से दुख की परम्परा ही बढती है। सासारिक सुख की अभिलाषा आत्मा को गलत मार्ग पर ले जाती है। सासारिक सुखो की अभिलाषा से धार्मिक अनुष्ठान करना मानो अमृत सरोवर के किनारे आकर तृषित रह जाना है या कीचड को चूसना मात्र है। धार्मिक अनुष्ठानो का आराधन मोक्ष रूपी फल के लिये होना चाहिये।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

विश्वमंगल प्रकाशन मंदिर
पालणा गुजरात